अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ
१.	प्रातः स्मरण	५
२.	देहकृत्य	५
३.	तिलक मुद्रा	६
४.	अंतःशुद्धि	६
५.	नित्य सेवाप्रकार	७
६.	मार्ग की रीत	१५
७.	सेव्य स्वरूप निर्णय	१७
८.	भेट को प्रकार	१८
९.	जप को प्रकार	१९
१०.	श्रीनाथजी की भावना	२४
११.	श्रीनवनीतप्रियाजी को स्वरूप	२५
१२.	श्रीमथुरानाथजी को स्वरूप	२६
१३.	श्रीविठ्ठलेश्वरजी को स्वरूप	२७
१४.	श्रीद्वारिकानाथजी को स्वरूप	२८
१५.	श्रीगोवर्धनधरजी को स्वरूप	२९
१६.	श्रीगोकुलचन्द्रमाजी को स्वरूप	३०
१७.	श्रीमदनमोहनजी को स्वरूप	३२
१८.	गोद के ६ स्वरूप	३३
१९.	लीला भावना	३४
२०.	श्रीयमुनाजी को स्वरूप	३६
२१.	श्रीमदाचार्यजी को स्वरूप	३८
२२.	श्रीगुसाँईजी को स्वरूप	४४
२३.	श्रीसातों स्वरूप	४६
२४	श्रीगोवर्धनपर्वत को स्वरूप	५०
२५.	ब्रज को स्वरूप	५१
२६.	भाव भावना	५३
२७.	प्राकट्य विचार	५४
२८.	नित्य सेवा भावना	५७
२९.	जन्माष्टमी को भाव	६०
३०.	श्रीराधाष्टमी को भाव	६१
३१.	दान एकादशी को भाव	६२
३२	वामनद्वादशी को भाव	६२
३३.	नवरात्री को भाव	६३
३४.	दशहरा को भाव	७०
३५.	शरद् पूनम को भाव	७०
३६.	धनतेरस को भाव	७१
३७.	रूपचौदस को भाव	७१
३८.	दिवारी को भाव	७३
३९.	अन्नकूट की भावना	७५
४०.	भाईदूज को भाव	७५
४१.	गोपाष्टमी की भावना	७६
४२.	प्रबोधिनी एकादशी को भाव	७७
४३.	श्रीगुसाँईजी के उत्सव की भावना	७९
४४.	वसंत पंचमी की भावना	८०
४५.	श्रीजी को पाटोत्सव को भाव	८१
४६.	होरी की भावना	८१
४७.	डोल की भावना	८१
४८.	रामनवमी को भाव	८२
४९.	श्रीआचार्यजी को उत्सव	८२
५०.	अक्षयतृतीया को भाव	८३
५१.	नृसिंहचतुर्दशी को भाव	८३
५२.	गंगादशहरा को भाव	८४
५३.	स्नान यात्रा को भाव	८५
५४.	रथयात्रा को भाव	८६
५५.	हिंडोला की भावना	८७
५६.	ठकुरानी तीज को भाव	८८
५७.	पवित्रा एकादशी को भाव	८८
५८.	राखी पूनम की भावना	९०
५९.	उपसंहार	९१
६०.	गुरूसेवा एवं वैष्णव कर्त्तव्य	९१

।।श्री हरि।।

।। श्रीमद्वल्लभाधीश्वरा विजयन्तान्तमाम् ।।

श्रीकाम्यवन - पंचमपीठान्वयप्रादुर्भुत

नित्यलीलास्थ गोस्वामी श्री

श्रीद्वारिकेशजी महाराज कृत

भाव भावना

प्रातः स्मरण

प्रातःकाल ऊठि माला यज्ञोपवीत स्मारनो, दर्शन करे, माला है सो दास्य धर्म हैं, वैष्णव हैं। जनेऊ वैदिक धर्म हैं, जनेऊ को अधिकार न होय तो माला सम्हारे। पाछें श्रीमदाचार्यजी महाप्रभुन को, श्रीगुसाँईजी को, श्रीजीको, सातों स्वरूपन को, स्मरणपूर्वक नाम लेइ दंडवत् करिये, तातें मानसिक, वाचिक, कायिक, यह तीनों, सिद्ध भये।

आचार विचार अंग

देहकृत्य

पाछें बहार आय देहकृत्य करें, घर सो नैऋत कोने जाय, जनेऊको दक्षिण कर्ण राखि देहकृत्य करिये, मृत्तिका को प्रमाण -

"एका लिंगे गुदे पन्च तथा वामे करे दश।
उभयोः सप्त दातव्याः पादयोस्तु विभिस्त्रिभिः।।"

(गुह्येन्द्रियमें १, गुदामे ५, वाम हाथ में १० और दोनों हाथों में ७ और दोनों पग में तीन-तीन बार मृत्तिका को प्रमाण हैं।) पाछे कुल्ला करिये ताको प्रमाणः-

"मूत्रै पुरीषे भुक्तांते रेतःप्रस्त्रवणे तथा।।
चतुरष्टद्विषट्द्वयष्टगण्डूषैः शुद्धिमाप्नुयात्।।"

(मूत्र पाछें ४ खरचु पाछें ८, भोजनांते १२, विषयांते १६) दंतधावन सूर्योदय पहेले करिये, मुख धोय, पोंछि, श्रीजी, सातों स्वरूपन को चरणामृत

(उठ गयो होय तो और मृत्तिका उत्तमस्थलन की मंगाय, छांनि, भिजोय, वामें शेषपात्र चरणामृत होय सो मिलाय देना, थेपली बाँध राखनी, वामें तें) नित्य लेनो। पाछें तेल लगाय, स्नन करि, अपरस वस्त्र पहेर के आसन पर बैठे।

तिलकमुद्रा

श्रीयमुनाजी की रेणु मुख में मेलि, हाथ आँखन सों लगावें। तिलक करनों सो हरिमंदिर भगवत्पदा कृति (चरणाकार) करनो। इतने तिलक भगवत्पदाकृति नहीं, तैसे न करिये।

वर्तुलं तिर्यगच्छिद्रं ह्रस्वं दीर्घतरं तनु।।
वक्रं विरूप वह्वाग्रं भिन्नमूलं पदच्युतम्।।"

(गोल, टेडो, छिद्ररहित, हंसव, अतिलांवो, छोटो, बांको, बेडोल, बंध्यो भयो हे अग्रभाग जाके मूल भिन्न हैं, पदभ्रष्ट, ऐसें तिलक निषिद्ध हैं।) इन विन ऊर्ध्वपुण्ड्र ।तेलक करि, मुद्रा धारण करिये।

पंचमहाभूतन की अन्तःशुद्धि - चरणामृत करि पार्थिवांशकी शुद्धि (पृथ्वी) चलचरुणामृत करि जलांश की शुद्धि (जल)। प्रसादी तुलसी करि तैजसांश की शुद्धि (तेज)। भगवदीयजन को संग करि वायु की शुद्धि (वायु)। भगवद् दर्शन तथा गुरूदर्शन करि आकाशांश की शुद्धि (आकाश)। "या वै लसच्छ्रीतुलसी" याकी श्रीसुबोधिनीजी में वर्णन किये हैं तेसैं बाह्यशुद्धि। पद्मधारणतें पृथ्वी की शुद्धि। शंखधारणते जल की शुद्धि। चक्रधारणते तेज की शुद्धि। गदाधारणते वायु की शुद्धि। नाममुद्रातें आकाश की शुद्धि। संप्रदायमुद्रा ते भक्ति की शुद्धि। यह संप्रदाय मुद्रा तो भावे तबही दें, याको कछु अटकाव नहीं हैं, सदा ही हैं। "यथारुच्याथवा धार्या" इति वचनात्। मुद्रा धोइ जल मुख में मेले।

नित्य सेवा प्रकार

पाछें मन्दिर के द्वार जाय दंडवत् करिये। यह श्लोक पढ़नो -

"नमो नमस्तेस्त्वृषभाय सात्त्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम्।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः।।"

यह श्लोक न आवे तो यों ही दंडवत् करिये। पाछें भीतर जायके खासा जल सूं मृत्तिका वा खली लेके हाथ धोवने। शीतकाल में वेगि होय तो दीवा करने। सब ठोर बुहारी मंदिर वस्त्र करि भीतर शैयानिकट जाय के रात्रि के झारी, बंटा बीड़ा, त्रष्टो लायके प्रसादी ठोर धरने। प्रसादी मथनो में झारी ठलावनो, बंटा के ठोर बंटा ठलावनो, सब पात्र मांज के धोय राखे। (गज ? वा पाषाण की भूमि होय तो गजीको हाथ एकको टूक मंदिर वस्त्रके तांइ करि राखिये। वाको भीजोय सब ठोर पोतना फिराइये।) पाछें हाथ धोंय सिंहासन झटकि बिछावनों, मुख वस्त्र चुनके धरनों, ऋतुअनुसार ओढ़वे को सिद्ध करि राखनों। (झारी दोय मांजे, तामें झारी एक भरि राखे, दूसरी झारी तो राजभोग आयवेके समे भरिये, एक झारी निबरा पहेराय सिंघासन पर तबकड़ी में धरिये।) मंगलभोग सिद्ध करि साज ढांक राखनों। जापें भोग धरत होय सो चोकी अथवा पडगी सिंहासन आगें लाय धरनी।

श्रीपादुकाजी विराजत होइ तो जगाय के दंडवत् करिये। पाछे बंटा तथा फुलेलको बंसला पास धरि बेठिये। बंटा में ते अंगवस्त्र लेइ श्रीपादुकाजी को करिये। पाछें अंगवस्त्र, रात्रि की ओढवे की ओढनी घड़ी करि बंटा में धरिये। एक पीढा पर वस्त्र बिछाय तापें श्रीपादुकाजी पधरावें, शैया झटकि फेर बिछावें, श्रीपादुकाजी कों फुलेल लगाय शैया पर पधराइये। समयानुसार ओढावें। बँटा, बांसला, पीढ़ा ठिकाने धरिये।

और जो श्रीहस्ताक्षर विराजत होय तो बसना वदलीये, जो चंदन के चरणार्विंद तथा वस्त्रसेवा होय तो थेली पहिराइये।

श्रीपादुकाजी के स्नान की विधि : - बरस एक में पांच बेर अभ्यंगस्नान होय। १. जन्माष्टमी २.रूपचतुर्दशी, ३.श्रीआचार्यजी को जन्मोत्सव, ४.श्रीगुसाँईजी को जन्मोत्सव, ५.जिनके श्रीपादुकाजी होइ तिनको जन्मोत्सव। संस्कृत (अधिवासन कियो भयो) जलसों स्नान स्नानयात्रा के दिन, शुद्धोदकतें स्नान डोल के दूसरी दिन, वा ग्रहणकोड गृहणस्नान, श्रीठाकुरजी स्नान करि चुके ता पाछें करावें।

पाछें घंटा तीन बेर बजाय, हाथ धोय पोंछ, (सीत सोय तो अग्नि के निकट सेक) शैया निकट जाय। ठाड़े होय के या भांत कहे - "जय जय जय महाराजाधिराज, महाप्रभो, महामंगलरूप, कोटिकंदर्पलावण्य, श्रीआचार्यजी के अन्तःकरणभूषण, श्रीगुसांईजी के लाडिले, श्रीयशोदोत्संग लालित, ब्रजजन के सर्वस्व, राजीवदल लोचन, अशरणशरण, शरणागतवत्सल, जय जय जय" या भांति भावसों कहि चादर उघारि के श्रीमुख देखि, सिंघासन पर गादी पर पधराय वस्त्र समयानुसार ओढावें। पाछें दूसरे स्वरूपन कों पधराइये, दोय स्वामिनी होय तो बड़े वाम भाग और छोटे दक्षिण भाग पधराइये, समयानुसार वस्त्र ओढ़ावें, पाछे मंगलभोग धरि दंडवत् करि, टेरा दे निकसिये, हाथ धोय शैयामंदिर में जाइये।

शैया सेवाः - ओढ़वे की चादर धरि करि राखे और वस्त्रसों ढांक धरिये, जो दिन में कबहू न ओढ़ें ताते, दोउ बलस्त गिरदा, कसना ४ खोलि, और ठिकाने धरि, बिछायवे की चादर सफेदी वा पर धरि, शैया ऊपर नीचे झटक और ठौर धरिये, पडपाइयां उठाय बुहारी सों मंदिरमार्जन करिये, मंदिरवस्त्र देह हाथ धोइ, पोंछि, शैया बिछाइये। समयानुसार ओढ़ाइये, अक्षय तृतीयातें लेके प्रारंभ हींडोले बिराजे ताके पहिले दिन में शैया पर कछु न ओढ़े। हिडोला विराजें ता दिन ते रंगीन चादर ओढ़े, जो हिडोले बैठवे की सौकर्य न होइ तो हू श्रावणते रंगीन चादर ओढ़े, पाछे कछु सीत होंइ तब खोलि, तातें अधिक सीत होय तो रजाई। दीवारी ते शैया पर सुफेती एक

बिछे, प्रबोधिनी ते दोय सुफेती, श्रीगुसाँईजी के उत्सव ते तीन सुफेदी और एक रजाई ओढ़े। यह ओढ़वे की परमावधि हैं, पाछें शैया ढ़ाकना तें ढाके, शैया के नीचे रूई की तह बिछे सो प्रबोधिनीतें लेके बसंतपंचमी पहेले दिन तांइ। या प्रकार शैया सि; करि ढ़ाक राखे दुपहर कों शैया भोग प्रभुन की ओर शैया पास रहे, तहाँ नीचे झारी तथा बीड़ा तथा त्रीष्टी शैया पास रहे, तहाँ नीचे झारी तथा बीड़ा तथा त्रीष्टी शैया की दूसरी रहे, उष्णकाल होय तो वामभाग सबतें नीचे पंखा रहे।

मंगलार्ती – पाछें समय विचारिके, आरती साजके खलीसुं हाथ धोय के, आचामन की झारी ले, (सीतकाल होय तो उष्णजल लेनो) बीड़ा लेके भीतर जानो। त्रीष्टो में आचमन कराय, मुखवस्त्र करि, बीड़ा दक्षिण दिस धरनों। भोग प्रसादी पात्र में ठलावें। पात्र तथा पडगी धोय, सिंहासन आगे मंदिर वस्त्र दे, दर्शन के किंवाड खोल के आरती करनी। दंडवत् करि, भीर सरकाय, टेरा देके हाथ धोय पोंछि, सिंघासन आगे सींगार की चोकी लाय धरिये। आभरण की पेटी, वागा, पीछोडा की झांपी साड़ी, पाग, कुलह, टीपारा, फेंटा, चंद्रिका, मेन कतरनी, शकला, वेणु, वेत्र, अंगवस्त्र धरिये।

स्नान – स्नान की परात, तामें पीढ़ा, तापर दुहेरो वस्त्र बिछाइये, स्नान के लिए उष्णजल हाथ को सुहातो कसेंडी में भरि पास धरिये सीत होय तो अंगीठी पास रखिये या प्रकार सब सिद्ध करि प्रभुन को चौकी पर पधरावें, रात्रि को श्रृंगार बड़ो करिये। अंजन पहेरत होय तो एक महीन वस्त्र तें पोंछि वह वस्त्र श्रृंगार की पेटी में धरिये। वस्त्र कूं रज लागे नहीं तातें, पाछें स्नान के पीढ़ा पर पधराय स्नान करावें, अंगवस्त्र करि चौकी पर पधरावें।

श्रृंगार – समयानुसार श्रृंगार धरावें। गोर स्वरूप होय तो अंजन वा अलंकार धरत होय सो धराइये, श्यामश्वरूप होय तो अलंकार मेन का

गोली देह धरावे, अंजन नहीं। पाछें दूसरी स्वरूप को श्रृंगार। श्रीस्वामिनी विराजत होय तो पहिले वामभाग श्रृंगार, पाछे दक्षिणभाग, श्रीठाकुरजी एक हरो वागा पहरें तब दोउ ठौर इकहरी चादर ओढें, जब दुहेरो वागा पहरें तब दुहेरी चादर ओढ़े, प्रबोधिनी तें रजाई ओढ़ें, बसंत पंचमीतें उपर स्वेत चादर ओढ़ें,कबहु केसरी, गरमी चातुर्मास में अकेली साड़ी अंतरीय, अत्यंतरीय चादर नहीं।

श्रीगोवर्धनशिला तथा शालिग्रामजी कूं स्नान कराइये, अंगवस्त्र करि ठिकाने पधराय, समयानुसार ओढावें।

प्रभुनको माला पहिराय, दर्पन दिखाय के झारी फेरि भरिये, श्रृंगार चौकी प्रभृति आगेतें सब उठाय के सिंघासन आगे मंदिर वस्त्र दे श्रृंगारभोग धरिये। टेरा दे, बहार आय, स्नान को वस्त्र तथा अंगवस्त्र यह दोउ भिजोय, निचोड के सुखाय दीजे, चरणामृत तुलसी में ठलाय, परात पीढ़ धोय धरिये, समे भये आचमन मुखवस्त्र कराय, बीड़ा धरि, भोग प्रसादी ठौर ठलाय, भोग के ठिकाने हाथ फेरिये।

ग्वालभोग धरनों– झारी बीड़ा काढि बीड़ा सिखोरी में धरिये। झारी दोय फेरि भरिये, समय भये भोग सराय, आचमन मुखवस्त्र कराय बीड़ा धरिये, ग्वाल को डबरा प्रसादी में ठलाय, डबरा धेय ठिकाने धरे, वा ठौर हाथ फेरि मंदिरवस्त्र देनों।

जो पालने बैठायवे को मनोरथ होय तब प्रभुन को पालने में पधरावें। पहले पालनो झार, वामें सुपेती बिछाय, चादर बिछाय, बलस्ती गिरदा धरि पाछें प्रभून को पधराइये। बांई ओर पड़गी पर एक तबकड़ी में झारी धरिये। दाहिनी ओर पडगी पर एक तबकडी में कछु सामग्री तथा ग्वाल को बीड़ा धरि वस्त्र सों ढांकिये। आगे चोकी पर तबकडी में खिलौना खिलायवे के धरिये, झुलाइये, खिलाइये, पालने के कीर्तन गाइये।

❖

राजभोग – राजभोग की सामग्री सिद्ध जानि, सिंघासन आगे मंदिर वस्त्र दे, हाथ धोय राजभोग की चौकी मांडिये, चौकी डिगत होय तो चीली लागाइए। कटोरी में जल भरि चौकी पर धरिये। सीत होय तो उष्णजल भर धरिये। अनसखड़ी सामग्री बांई ओर चौकी पर धरिये। सखड़ी सामग्री आगे चौकी पर धरिये। भोग सब आय चुके पाछें प्रभुन कों पधराइये। दोउ झारी आस पास दोउ ओर धरिये। थार संवारि (छांनि) रसीली वस्तून में चिमचा धरिये। तुलसी सब सामग्री में धरिये। शंखोदक कीजिये, या प्रकार हाथ में शंख में तें जल लेइ सामग्री पर छिरकिये। धूपदीप करि श्रीआचार्यजी, श्रीगुसांईजी को स्मरण करि, 'इनकी कांनितें अंगीकार करोगे' यह विज्ञप्ति करि, टेरा देइ, बाहिर आइये। जो मंदिर में राजभोग धरिवे को सौकर्य न होय तो रसोई घर में सामग्री (भोग) साजि छोटे सिंघासन पर बहांही पधराइये।

पालनो ढांकि, तबकड़ी प्रसादी पात्र में ठलाय, बीड़ा सिखोरी में धरि, तबकडी धाइये। राजभोग के बीड़ा साजि आचमन की झारी पॉस धरिये। शैया के बीडा साजि शैया पास धरिये। सब भोग में बीडा को सौकर्य न होय तो सुपारी कुटि लवंगचूर इलायची मिलाय एक बंटा भरि राखिये। वामें ते एक कटोरी में थोरो थोरो प्रतिभोग धरिये। प्रसादी में एक बंटा करि राखीये, वामें ठलावत जाइये। राजभोग में बीड़ा बनि आवे तो आछो। उष्णकाल होय तो मृत्तिका को कुंजा भरि, वस्त्र लपेट राखिये। पाछे संध्या जपपाठ नित्य कर्म करिये।

समय भये आचमन को झारी भरि, हाथ में लेइ, बीड़ा लेइ, टेरा खुलाय मंदिर में जाइये। आचमन मुखवस्त्र कराय, बीड़ा धरि, झारी दोय फेरि भरिये। एक झारी सिघासन पर तबकड़ी पर अथवा पास पडगी होय तापर वाम भाग धरिये। एक झारी शैया पास धरिये। भोग सराय, मंदिर दोय बेर धोय, मंदिर वस्त्र करिये।

❖

राजभोग दर्शन - प्रभून को माला फूल की पहिराय, आरसी दिखाय, ठिकाने धरिये। गरमी के दिन होय तो कुंजा दाहिनी दिस धरिये। बीड़ा के पास पंखा सिंघासन पर धरिये। चंदन की कटोरी एक प्रभु पास, कटोरी एक शैया के पास बीड़ा के निकट धरिये। चंदन तो अक्षय तृतीया सों एक मेह बरसे हूंफ मिटे तहां तांई। कुंजा करवा जन्माष्टमी के पहिले दिन तांई। सिंघासन पर पंखा दशहरा तांई। शैया के पंखा दीवारी की रात्रि तांई। सिंघासन आगे खंड बिछाइ, ऊपर लंबी गादी बिछावें। तापर हाथी दांत के खिलौना वाम भाग, काष्ठ के लाल खिलौना दक्षिण भाग पडगी पर धरे। प्रबोधिनी ते सिंघासन आगे तह बिछें सो बसंतपंचमी के पहले दिन तांई, और बेर तो खंड के आगे तें शैया तांई पंडो बिछे। एक गादी खंड आगे, एक गादी शैया आगे धरिये। चौपड की चौकी तथा आसपास की चौकी सब धरें। चौपड़ के दोउ ओर गादी बिछावें, जो तह बिछे तो शैया पास धरिये। जब पेंडो बिछे तो सिंघासन के खंड आगें धरिये। गेंद दो वा तीन धरे, तैसे ही चौगान धरे। किंवाड खुलाय आरती करिये, दंडवत् करि, हाथ धोइ, आरती दिखाई ठिकाने धरि, भीर सरकाइ माला बड़ो करि, पास धरि, किंवाड मंगल करि, ताला अटकाइ, प्रसादी बीड़ा माला वा सुपारी गोद में लेंइ, पाछे मंदिर आगे दंडवत् करि बाहिर आवें।

ब्राह्मण तथा वैष्णव को सन्मान करि आपुन महाप्रसाद लेनों। बिगर्यो संवर्यो होय सो कहिये। तो दूसरी बेर सामग्री भली भांति करें अचवाय के मुखशुद्धयर्थ बीड़ा खाइ, आलस्यभावार्थ थोड़ो सोवनों, फेरि उठ देहकृत्य, करि, शुद्धयाचमन करि पुस्तकावलोकन करनों। भगवत्सेवोपयोगी जानि व्यापार करनो।

उत्थापन - पाछें समें विचार (छै घड़ी दिन रहे) पूर्व रीतिसों स्नान करि, फलफूल सामग्री सिद्ध करि, मंदिर में जाय घंटा तीन बेर बजाइ, खलीसों हाथ धोइ, उत्थापन के किंवाड खोल, दंडवत् करि दर्शन करावें,

पहिले सिंघासन नीचे को तह वा पेंडो वा चरणगादी उठाय ठिकाने धरिये। पाछें हाथ धोय के झारी भरि प्रभु पास धरिये। पाछें भीड़ सरकाइ उत्थापन भोग धरिये, पाछें शैयामंदिर में जाइ, बंटा झारी शैयाभोग प्रसादी पात्रन में ठलाइ, बंटा धोइ पोंछ रात्रि का शैया भोग बंटा में धरि ढांकिये। झारी ठलाय जलपान की मथनियां पास धरिये। त्रष्टी धोय धरिये। बीड़ा होय तो सिखोरी में ठलाइये, सुपारी होय तो बंटी में ठलाइये। पाछें आचमन की झारी भरिये। कुंजा के दिन होइ तो कुंजा भरिये। चंदन प्रसादी निकस्यो होइ तो एक दथरी में ठलाइये, कटोरी धोय के रात्रि को अंगराग सिद्ध करिये। बालस्ती उठाय, शैया ढंकनां ते ढांकिये। कसना प्रबोधिनी तें लेके डोल के दिन तांई न बंधे। शैयाभोग को बंटा बांई ओर, ता नीचे झारी, कुंजा के दिन होइ तो बंटा के उपली ओर कुंजा रहे। सब तें नीचे पंखा, दक्षिण दिस झारी, ता नीचे बीड़ा वा सुपारी, ता पास संध्या आरती भये पाछे माला बड़ी होइ सो तथा शयन आरती पाछें माला बड़ी होय सो धरिये।

भोग – पाछें बाहिर आई आचमन की झारी तथा बीड़ा त्रष्टी हाथ में लेकें टेरा खोलि भीतर जाय। आचमन मुख वस्त्र कराइ, बीड़ा धरि, त्रष्टी ठलाइ धोइ चौपड़ की चौकी पास धरिये, माला पहिराइये, खंड के आगे चौपड़ की चौकी तथा आसपास की चौकी न मांडी होइ तो मांडीये। भोग सर्यो होय सो पात्र में ठलाइ, पात्र धोय धरिये, दर्शन के किवाड़ खोलिये, श्रीपादुकाजी हाथ में पधराय, शैया हाथसों झटकि, तापर फेरि पधराय समयानुसार उठाइये। दंडवत् करि हाथ आंखिन सों लगाइये। हाथ धोय पाछें टेरा दे, संध्याभोग धरीये। समे भये पाछें भोग सराय, आचमन मुखवस्त्र कराय, बीड़ा धरिये, पाछें घड़ी एक दिन रहे तब वेत्र श्रीहस्त में धराय संध्या आरती करिये। दंडवत् करि, भीड चलाइ, किंवाड देइ, हाथ धोइ, त्रष्टी धोइ धरिये, खिलौना को तबकड़ी ठिकाने धरिये, खंड उठाय, खंडको वस्त्र तथा गादी घड़ी करि धरिये। चौपड़ एक कोथली

में धरिये। आस पास की चौकी, चौपड़ की चौकी सब साज ठिकाने धरिये, श्रृंगार चौकी आगे लाय धरिये। प्रभुन को पधराय श्रृंगार बड़ो करिये। प्रौढ़ स्वरूप होइ तो इतनों राखनो, पाग, तिलक, अलकावली, छोटे कर्णफूल, कंठाभरण, फुंदना विनाकी पहुँची बेसर, नूपुर, तनिया। सूक्ष्मस्वरूप होइ तो पागमात्र रहे, और जो मुख्य वेही स्वरूप विराजत होइ तो वाम भाग व दक्षिण भाग के बड़े हार क्षुद्र घंटिका बड़ी करिये, और सब रहें। पादें छोटे सिंघासन व बड़े सिंघासन पर पधराइये।

ग्वाल को सौकर्य होय तो प्रातःकाल की रीति सों ग्वाल भोग धरिये। झारी बीड़ा काढ़ि ठिकाने धरिये, बीड़ा सिखोरी में धर झारी दोउ भरी सिद्ध करि राखिये, समे भये ग्वाल भोग सराय, आचमन मुखवस्त्र कराय, बीड़ा धरे, डबरा प्रसादी में ठलाय धोय धरिये, त्रष्टी धोय, बीड़ा ठिकाने धरि, मन्दिर वस्त्र दे हाथ धोवें।

सेनभोग – सखड़ी को विचार होइ तो झारी आस पास धरिये, जो अनसखड़ी सेन भोग को विचार होइ तो झारी एक धरिये, एक झारी होइ तो सदा वामभाग धरिये, बीड़ा सुपारी दक्षिणा भाग धरिये। भोग समपिके धूपदीप करिये। पौन समे होइ तब दूसरो भोग आवे। पादें समय भये आचमन मुखवस्त्र कराय, त्रष्टी धोय धरिये, मन्दिरवस्त्र दे झारी भरि शैया मन्दिर में शैया पास धरिये। उष्णकाल में तिवारी में सांगामाची पे आवे। माला पहिराइ किवाड़ खोलिये, सैन आरती करि, दंडवत् करि भीड चलाइ, किवाड देह हाथ धोइये। माला बड़ी करि शैया पास धरिये, जो उष्णकाल होय तो सिराहने की बालस्ती के आस पास धरिये, शयनार्ती की माला वाम भाग धरे, संध्याआर्ती की माला दक्षिण भाग धरे, जो सीत होय तो बीड़ा की तबकड़ी में दक्षिण भाग धरे, शैया ऊपर की चादर उघाड़ि आवें, पाछें प्रभुन को पधरावें। शैया पर पधराय वाम भाग दक्षिण भाग को स्वरूप पधरावें। चादर उढाय दें, पाछें श्रीपादुकाजी कों पौढ़ाइये, सिंघासन के पास आय मुखवस्त्र घड़ी करिये, ओढवे को वस्त्र घड़ी करे,

सिंघासन वस्त्र उलटावे, शैया ढकना ते सिंघासन ढांकनों, किवाड़ दे, ताला मंगल करि कूंची हाथ में ले के प्रसादी बीड़ा वा सुपारी ले के बाहिर आई, मंदिर की दंडवत् करे, कूंची ठिकाने धरे।

प्रसाद ले, अचवाय, मुखशुद्धयर्थ बीड़ा खानो। भगवदीयन सों मिलि भगवतवर्ता करनी, काम निवृत्यर्थ स्वस्त्री सों ही संग करि, भाव यह राखनो जो संतान होय तो सेवानुकूल होय। पाछें चरणामृत लेके सोवनो। तो दुःस्वप्न न आवे यह अवांतर फल हैं। मुख्य फल तो यह जो शरीर अनित्य हैं, कौन जाने जो स्वांस रहे के न रहे ? खाटही पे जीव निकस जाय तो ? चरणामृत लैकें सोये होंइ तो अवगति न होय। श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसाँईजी, और जा घर को सेवक होय तिनके सेव्यस्वरूपन को स्मरण करि निद्रा करिये। या विधि व्यसनांत भक्तिवर्धिनी रीति सों सेवा करे तो कृतार्थ होय।

।।' इति श्रीद्वारिकेशजी कृत नित्यकृत्य सम्पूर्ण ।।

मार्ग की रीत

पुष्टिमार्ग में भक्ति निर्गुणा हैं, व्यासीमी हैं। (सत्त्व, रजः और तमः यह तीनों गुण हैं। तीनों गुण परस्पर मिलवेंसूं तीन तीन नव भये। यह नव भेद नवधा भक्ति में मिलायवे सूं नव नव गुणन एक्यासी भये। और व्यासीमी भक्ति निर्गुणा हैं।) तातें मार्ग की रीति सूं सेवा करे तो सेवाफलोक्त फल तीन होंइ। या प्रकार सेवा न करे तो सेवाफलोक्त प्रतिबंध तीन होंइ, जन्मांतर होइ, तातें मार्ग रीति सों चलिये। पहले शरणमंत्र लेइ, ११ ग्यारह दिन को होय तबतें योग्यता, या मंत्र ते हृदय शुद्ध होय और निवेदन मंत्र की योग्यता होइ। श्रवणतें प्रारम्भ दास्य पर्यंत भक्ति ७ होंइ, सो निवेदन मंत्र बीज हैं, जैसे खेत खेडिये, पाछें बीज बोबे तो फलित होइ, तातें शरणमंत्र पाछें निवेदन मंत्र अवश्य लेनों। उपवास की अवश्यता नहीं।

'अज्ञानादथवा ज्ञानात् कृतमात्मनिवेदनम्' इति वाक्यात्।

(उपवास) पालवे को विचार होइ तो इन्द्रिय शुद्धयर्थ प्रथम दिवस उपवास करि, दूसरे दिन शुद्धयर्थ श्रीजी की भेट देइ, पाछें मुख्य भेट गुरूकी देइ, मंदिर में जाइ, चरनस्पर्श करि, वैष्णवन कों प्रसाद लिवाइ, तब ते पालिये। पाछें सर्वथा अन्याश्रय न करनो, असमर्पित न खाइये।

और नामधारी के समर्पणी के ठाकुर एक ठौर न बिराजें, जो नामधारी के ठाकुर समर्पणी के यहाँ पधारे होंइ तो बाहर विराजें, मंदिर में नहीं। समर्पणी के ठाकुर को भोग सरे सो प्रसादी अरोगे। और समर्पण लियो होइ परंतु पालत न होइ तो वाके ठाकुर मंदिर में दूसरे सिंघासन पर विराजें, जूदो भोग धरे, जो पालत होइ तो एक सिंघासन पर विराजें, जुदो भोग धरे। जो पालन होइ तो एक सिंघासन पर बिराजें। तब भोग जूदो नहीं, भेलो अरोगे, वैष्णव के ठाकुर अपने मंदिर पधारें होइ तो सामिग्री में अधिक न करिये, प्रभु की भूख को कछु प्रमान नही, जो होइ तो अन्नकूट की सामिग्री अधिक होइ, वैसें ही अरोगें, वस्त्रादिक पहिराइये।

अथ अभ्यंग को विचार लिख्यते

शनिवार के दिन रात्रि को श्रृंगार बड़ो करि, स्नान के पीढ़ा पर पधराइ, फुलेल लगाइ, उबटना लगाइये, उबटनां को प्रकार - अबीर कटोरी में मेलि, भिजोंइये, अथवा गहुँला नखला में कपूर काचरी में सुगंध होत हैं, वाकों कूटि छानि राखिये, वामेंते थोड़ो लेइ के कटोरा में भिजोई देनो। सीतकाल होइ तो उष्णजल ते भिजोवे, पाछें श्रीअंग में लगाइ उष्णजलते स्नान कराइये, अंगवस्त्र करि चौकी पर पधराइये, और उत्सव के दिन दोइ वा तीन रहे होंइ तो ता शनिवार को कछु आवश्यक नहीं। उत्सव के दिन अभ्यंग होइ, स्यामस्वरूप कों अभ्यंग पाछें फेरि फुलेल लगाइये। अंगवस्त्र करनो। नित्य हू स्नान पाछें अंगवस्त्र करि फुलेल लगाईकें, फेर अंगवस्त्र करनों, और गौर स्वरूप होंइ तो अभ्यंग के समे

फुलेल लगाइ, पाछें उबटनां लगाइ, स्नान कराइ, अंगवस्त्र करे। फेर फुलेल नहीं, और नित्य हू फूलेल नहीं, अभ्यंग के दिन सिंघासन वस्त्र और बिछावनो, शैया के वस्त्र तथा गादी तकीया के वस्त्र तथा मुखवस्त्र बदलिये, जो प्रति अभ्यंग न बदले तो एक अभ्यंग बीच दूसरे अभ्यंग को वस्त्र सब बदलिये, मुखवस्त्र तो प्रति अभ्यंग को बदलिये।

सीतकाल में चंदौबा, पिछवाई, सिंघासन वस्त्र आदि सब लाल साज मखमल, मसरू खिमखाब आदि पाटके बिछे, गादी पर मलमल मात्र, वसंत ते स्वेत साज सो डोल तांई, डोल के दूसरे दिनते सो अक्षय तृतीया के पहिले दिन तांई छींट की साज गादी पर, अक्षयतृतीया ते सो हिंडोला बैठे तहां तांई स्वेतसाज, चातुर्मास में रंगीन प्रति सब साज बिछें, उत्सब को तो सदा लाल साज गादी प्रभृति सब बिछे।

सेव्य स्वरूप को निर्णय

वैष्णवन के घर स्वरूप विराजत हैं, ते यह भाव राखे; जा घर के सेवक, तिनके मुख्य सेव्य स्वरूप, तिनको आविर्भाव, स्वरूप मुख्य आठों सगान।

"षोडश गोपिकानां मध्ये अष्ट कृष्णा भवन्ति"

श्रीजी तथा सातों स्वरूप, तहां इतनो भेद। वृन्दावन स्थित लीला केवल पुष्टि श्रीजी के यहां, नंदालयस्थित लीला बाह्य मर्यादा अन्तःपुष्टि सातों स्वरूप के यहां, स्मरणीय श्रीजी अरु सेवनीय सातों स्वरूप।

'सदा सर्वात्मना सेव्यो भगवान् गोकुलेश्वरः।
स्मर्तव्यो गोपिकावृन्दे क्रीडन् वृन्दावने स्थितः।।'

याते सेवा करे सो अपने घरकी रीत की करनी, जो घर की जैसी रीत ता रीत सों करनी। तहाँ वैष्णव को यह विचारनो जो श्रृंगार तथा सकल सामिग्री अंगीकार करत हो, वहां स्वमार्गीय विधिपूर्वक, यहाँ यद्किंचित् में समर्पत हूँ, सो अंगीकार करोगे यह भाव राखे, तो जो समर्पे सो अंगीकार

होइ, तब सकल सामिग्री अंगीकार होत हैं। ताते जो वैष्णव सों व्यवहार होइ, प्रसाद लेवे को बुलावें, तहां जाइ, जो प्रसाद परोसे सो लेइ। आपु यथाशक्ति भोग धर्यो हैं, परंतु जाके भावसों विराजत हैं, तहां सकल सामिग्री अरोगें, यातें समान राखिवे कों अवश्य जाइ, प्रसाद लेइ यामें बाधक नहीं, समाज रहे तो उत्सव कीर्तन चले, तब गुरूसेवा भगवत्सेवा सिद्ध होइ।

"यस्य देवे परा भक्तिः यथा गुरौ" इति वाक्यात्।

भेट को प्रकार

सेव्य स्वरूप को बरस एक में तीन बेर भेट करे ताको प्रकार - प्रथम पवित्रा के दिन प्रभून कों पवित्रा धराय, दूसरो पवित्रा गुरूके भाव सों प्रभूकों पहिराय भेट करिये। घर में जो होंई वेहू यथाशक्ति भेट धरें, इनहूँ को सेवा सिद्ध होइ तातें, दूसरी भेट जन्माष्टमी के दिन तिलक के समे तो श्रीफलमात्र भेट धरें, मुख्य भेट तो प्रभु पालने पधारे तब हाथ एक को कपड़ा रेशमी वस्त्र प्रभून को पलना में मांडि के उढ़ावे, पाछें आप तथा घर के जे होंइ ते भेट धरें, सो पालने के आगे खिलोना की तबकड़ी में बंटी होइ तामें भेट धरिये, तामें भाव यह राखे जो श्रीनंदरायजी के सगे संबंधी झगा, टोपी चूड़ा को लावें या समे, सो अधिकार श्रीमहाप्रभुन की कृपा तें आपुन को हू भयो, यह भाग्य, तृतीय भेट दीवार को रात्रिको प्रभु हटडी में पधारें, तब सब भेट बांटि के चौपड़ के चारो खाली खंड में धरे, सो चारों भाग सरखे करे, तामें जो वढ़े सो बीच के खंड में धरे, तामें यह भाव राखे जो प्रभू जूबा लगाइ खेलत हैं, सो न धरिये तो प्रभू जूबा न खेलें, और आपुन को इतनी सेवा सिद्ध न होई, तातें अवश्य बांटि चारों ओर धरिये, बढ़े सो मध्य में रहे, पाछे यह तीनों भेट गुरू के यहाँ अवश्य पहुँचावनो, पवित्रा की भेट तो गुरू की ही होई यह हू दोउ भेट गुरू के सेव्य स्वरूप

की हैं, तातें जहाँ उत्सव कीर्तन की भेट रहे तहाँ येहू तीनों भेट सुध करिके दई चाहिये। तब सांग सेवा सिद्ध होइ।

जप को प्रकार

वैष्णव को चार प्रकार की माला जपनी - १. तुलसी की २. वर्णमाला ३. करमाला ४. शुद्धकाष्ठ की माला, मानिका १०८, सुमेरू जूदो। ताको आशय "शतायुर्वे पुरूष" या श्रुतिमें शत आयुकी शत मृत्यु विषे निवेश कह्यो हैं। एक एक आयु को एक एक मृत्यु ले जाय।

"अत्रात्र वै मृत्यु जयिते" "आयुर्हरति वै पुंसां" इति च, 'कृते लक्षं तु वर्षाणि त्रेतायामयुतं तथा। द्वापरे तु सहस्त्राणि कलौ वर्षशतं स्मृतम्।।

या वाक्य में सत्ययुग में लक्ष वर्ष की आयुष्य कही, तब एक आयुष्य सहस्त्र वर्ष भोगवें, त्रेता में दस सहस्त्र की आयुष्य कही तब शत वर्ष भोगवें, द्वापर में सहस्त्र वर्ष की आयुष्य कही तब दस वर्ष भोगवें, कलि में शत वर्ष की आयुष्य कही तब एक वर्ष की आयुष्य भोगवें।

कलि में सौ को नियम नहीं तब पचास होय तो छः महिना भोगवें, पच्चीस होय तो तीन महीना भोगवें, सूक्ष्म काल होय तो सो पल करि भोगवें, अतिसूक्ष्म काल होय तो सौ क्षण करि भोगवें।

तातें सिद्धान्त यह जो आयु भोगवें विना प्राणोद्गमन न होय, यातें आयु को काल के मुख में ग्रास होत है, ताको दोषनिवारण को शत मनिका करिके शत भगवन्नाम लेय तो काल के ग्रास के दोष निवृति होय। भगवन्नाम करके हरण भयो, या भांति जाकी आयुष्य को भगवन्नाम करिके हरण भयो, ताको भगवत्स्वरूप श्रृंगारस रूप संयोगवियोग भेद करिके धर्मी द्विविध तथा धर्म भगवान के - (६) (१.ऐश्वर्य, २.वीर्य, ३.यशः ४.श्री ५. ज्ञान, ६. वैराग्य) ऐसे अष्टविध भगवत्स्वरूप हृदयारूढ़ होय, और सुमेरुवत्स्वरूप

हृदयारूढ़ होय। और सुमेरु में माला को सूत्र बँध्यो हैं। तैसे भगवच्चरणारविंद में मन को सूत्र बँध्यो हैं तो अधःपात न होय, ऊर्ध्वगति होय। ''पतंत्यधोनादृतयुष्मदंघ्रयः'' इति वाक्यात्। तुलसी की माला मुख्य यातें दिव्य गंध हैं। देवभोग्य हैं, 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं' इत्यत्र पत्रं तुलस्यादि। अथ च भक्तिरूपा, 'गोविंदचरणप्रिये' इतिवाक्यात्। यातें तुलसी की माला मुख्य।

करमाला अनामिका के मध्यते प्रारंभ तर्जनी के अन्त पर्यन्त दश होय, तर्जनी के अन्त में प्रारंभ अनामिका के मध्य में समाप्ति। या भांति गिने, मध्यमा के मध्य को तथा अन्त को दोऊ पर्व सो सुमेरु, 'पुष्टि कायेन निश्चयः' या वाक्यते पुष्टिसृष्टि को प्राकट्य श्रीअंग ते हैं, या सृष्टि को सेवा को अधिकार हैं, सेवा तो करसो हैं, साक्षाद्विनियोग करको ही हैं। तातें करमाला मुख्य।

वर्णमाला - क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म य, क आदि २५ स्पर्शाक्षर, अन्तः - स्थाक्षर (य र ल व) उष्माक्षर (श ष स ह) संयोगी अक्षर (क्ष) स्वराक्षर १६ (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः) सब मिली ५० भये। व्युतक्रमसूं गिनिये तो ५० होय। मिली १०० भये। क च ट त प य श अ ये आठ और मिलें १०८ की माला भई। ल क्ष ये दोऊ अक्षर सुमेरु

''स्पर्शस्तस्याभवन्जीवः स्वरो देह उदाहृतः।
ऊष्माणमिंद्रियाण्याहुरंतःस्था बलमात्मनः''

या वाक्य ते स्पर्शाक्षर २५ शब्द ब्रह्म को जीव, स्वराक्षर १६ शब्द ब्रह्म की इन्द्रिय, अतः स्थाक्षर ४ शब्दब्रह्म को बल। संयोगी अक्षर ज्ञ सो तो जज्ञोर्ज्ञः ये दोऊ स्पर्शाक्षर ही हैं, या प्रकार ब्रह्म को संबंध हैं, तातें वर्णमाला मुख्य हैं।।३।।

शुद्ध काष्ठ की माला यातें प्रशस्त हैं, जो जामें काहू देवता को भाग नहीं, तामें सर्वेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र हैं। तिनको भाग जैसें काहू की सत्ता नहीं

तहाँ राजा की सत्ता तैसें। अथ च **"वैष्णवा वै वनस्पतयः"** इति श्रुतेः काष्ठ वैष्णव हैं। तातें यहू माला प्रशस्त हैं। यातें शरणमंत्र निवेदन मंत्र के उपदेश के पीछे काष्ठ की माला देत हैं। वैष्णवत्वात् भवदीय को संग किये।।४।।

जप करिवे के मंत्र दो हैं १. शरणमंत्र २. निवेदनमंत्र, तहाँ अष्टाक्षर शरणमंत्र को अवतार फल सो जो यह हृदय की शुद्धि तथा आसुरभाव की निवृत्ति।

"तस्मात्सर्वात्मना नित्य श्रीकृष्णः शरणं मम,
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः, एवं वदद्भिरिति च,
"श्रीविष्णोर्नाम्नि मन्त्रेऽखिलकलुषहरे शब्दसामान्यबुद्धिरिति" वाक्यात्

और मुख्य फल तो १. श्रवण २. कीर्तन ३. स्मरण ४.चरणसेवन ५.अर्चन ६.वंदन ७.दास्य ये सात प्रकार की भक्ति सिद्ध होय, और निवेदनमंत्र की योग्यता होय। शरणमंत्र में श्रीपद हैं सो भक्तकों बहिर्दर्शनार्थ जो आविर्भूत तिनको स्मरण हैं।

"कदाचित्परमसौन्दर्य स्वगतं करिष्यामोति साकार प्रादुर्भूतं सत् श्रीकृष्णः" इति निबंधे, तथा भगवत्स्वरूप विषे आर्ती होय, "स्मृतिमात्रार्तिनाशनः" "वदनदिदृक्षार्ति तापो जनेषु" इति वाक्यात् शरणमंत्र के दोय फल, मंत्रमें श्रीपद है ताके आशय दोय जाननें।

पंचाक्षर निवेदन मंत्र बीज है, या मंत्र को अवतार फल संख्य तथा आत्मनिवेदन भक्ति दोउ। **"भगवानेव शरणं"** यह रत्याख्य कोमल बीज भाव तथा सावरण सेवा साधनरूपा प्रेमासक्ति पर्यन्त, और मुख्यफल तो व्यसन सर्वात्मभाव पर्यंत फल रूपा मानसी भक्ति। द्रुमसिद्धसेवा निरावृत सिद्ध तब जब मूर्तिबुद्धि निवृत्त होय, "श्रृंगार कल्पद्रुममिति वाक्यात्। सर्वात्मभाव को स्वरूप सर्वेद्रिय संबंधी आत्मा जो अंतःकरण ताको भगवानविषे भाव। सो भाव साधनरूप आधुनिक भक्तन विषे "हरिमूर्तिः सदा ध्येया" इत्यादि निरोधलक्षण विषे निरूपण किये। फलरूप भाव तो लीलास्थभक्तन

विषें 'भगवता सह संलापाः' इत्यादि कारिकान विषे "अक्षण्वतां फलमिदं" या श्लोक में निरूपण किये हैं। अब फलरूपा मानसी के मध्य फल ३ हैं।

अलौकिक सामर्थ्य सो सर्वाभोग्या सुधा धर्मिरूप आनन्द।।१।। सायुज्यं भगवद्भोग्या सुधा धर्मभूत आनन्द प्रभु अप्रधानीभूय भक्तपरवशतें।।२।। सेवोपयोगिदेहो वा वैकुण्ठादिषु, देवभोग्या सुधा धर्मभूत आनन्द प्रभु प्रधानीभूत स्ववश हैं।।३।।

ये तीन फल, जैसो स्वर्गफल तामध्य अमृतपानादि तद्वत् मानसी फलरूपा ता मध्य ये तीन ३ फल होंय।

यह पूर्वपक्ष जो अंतर्यामीरूप करिके तो भगवान् सबन के हृदय में हेंइ। उपदेश लेवे को आशय कहा ? तहाँ कहत हैं -

बहिश्चेत्प्रकटः स्वात्मा, वहिन्वत्प्रविशेद्यदि,
तदैव सकलो बंधो नाशमेति न चान्यथा।।१।।
स्वात्माबहिश्चेत्प्रकटः वहिन्वत् यदि प्रविशेत्
तदैव सकलो बंधो नाशमेति अन्यथा न।।२।।

जैसे अरणी के काष्ठ में अग्नि हैं, पर दाहक सामर्थ्य नहीं, जब मथन करिकें वा अग्नि को स्पर्श अरणी कों करिये तब काष्टांश निवृत्त करि जैसो अग्नि को स्वरूप हैं तैसो करे, ऐसे ही अंतर्यामी रूप करिके यद्यपि अंतःकरण में है तोहू बंध निवर्त्तक सामर्थ्य नहीं, तो भक्ति देके भगवत्प्राप्ति कैसें होय ? यातें गुरूपदेश मुख्य हैं, गुरू तो या प्रकार को शिष्य के हृदय में स्थापन करत हैं।

अंतःप्रबिष्टो भगवान्मुखाधुद्धृत्य कर्णयोः।
पुनर्निविशते सम्यक् तदा भवति सुस्थिरः।।१।।

ताते गुरूपदेश आवश्यक हैं, बिना श्री वैष्णवीं दीक्षां प्रसादं सद्गुरोर्विना। श्रीवैष्णवं धर्म कथं भागवते भवेत् ? उपदेश न लेइ तो बाधक हैं।

अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्वं निरर्थकम्,
पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षाहीनो मृतो नरः।

गुरू हू वैष्णव होय,

"महाकुलप्रसूतोपि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
सहस्त्रशाखाध्यायी च न गुरुः स्यादवैष्णवः।।१।।

दीक्षा लैवे में कालादिक हू बाधक नाही, न तिथिर्न च नक्षत्रं न मासादिविचारणा।

दीक्षायाः कारणं तत्र स्वच्छा प्राप्ते च सद्गुरौ। सद्गुरू चहिये।

"कृष्णसेवा परं वीक्ष्य दंभादिरहितं नरम्।
श्री भागवततत्वज्ञं भजेज्जिज्ञासुरादरात्

इतनें लक्षण न होंय तो हू निष्कलंक श्रीआचार्यजी को कुल हैं तातें यह पुष्टिमार्ग के उपदेष्टा गुरू आप ही हैं, और दूसरे गुरू सों पुरूषोत्तम की प्राप्ति नाहीं।

'नमः पितृपदांभोजरेणुभ्यो यन्निवेदनात्।
अस्मत्कुलं निष्कलंकं श्रीकृष्णेनात्मसात्कृतम् ।।१।।

मंत्रोपदेश हू लीजिये सो शरणमंत्र पीछे निवेदनमंत्र। नवंधा भक्ति ये दोऊ मन्त्रन करिकें होत हैं। नवधा भक्ति बिना प्रेमलक्षणा भक्ति न होय। प्रेमलक्षणा बिना पुरूषोत्तम की प्राप्ति नहीं।

विशिष्टरुपतेदार्थः फलं प्रेम च साधनम्।
तत्साधनं च नवधा भक्तिस्तत्प्रतिपादिक
श्री वल्लभाचार्यमते फलं तत्प्रकट्यं इत्यादि।

मन्त्रोपदेश पाछें भजन हू करिये सो श्रीकृष्णचन्द्र को ही करिये। सारस्वतकल्प में प्राकट्य हैं तिनको पूर्ण वेही हैं। **"कल्पं सारस्वतं प्राप्य ब्रजे गोप्यो भविष्यथ।"** और कल्प में श्रीकृष्णावतार पूर्ण नहीं। हरेरंशाविहागतौ। सितकृष्णकेशौ इति च। और श्वेतवाराहकल्प में अर्जुन को गीता को उपदेश किये वा समे संकर्षणव्यूह में पूर्ण पुरूषोत्तम को आविर्भाव हो। **"कालोस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्त्तुमिह प्रवृत्तः"** इति वाक्यात्। गीता सर्वदा तो मोक्ष के लिये हैं, भक्ति के लिये नहीं।

कल्पेस्मिन्सर्वमुक्त्यर्थमवतीर्णस्तु सर्वशः। इति वाक्यात्। तातें निष्कर्ष यह जो सेवनीय कथनीय भजनीय श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं। जो सारस्वतकल्प में पूर्ण को प्राकट्य हे तेही श्रीभागवत में लीला पूर्ण कियें हैं और गीता उपदेश में हू ५७४ वाक्य कहे हैं, सोऊ पूर्ण के आवेश सों कहे हैं तातें भक्तिशास्त्र सो गीता श्रीभागवत हैं, श्रीकृष्ण फलरूप के वाक्यतें गीता फलरूप और गीता को विस्तार श्रीभागवत सो हू फलरूप हैं। **'गायत्री बीजं वेदो वृक्षः श्रीभागवतं फलमिति वाक्यात्'** श्रीगीता श्रीभागवत ते प्रगट भयो ऐसो जो पुष्टिमार्ग सो हू फलरूप हैं। पुष्टिको आविर्भाव श्रीअंगते हैं। **पुष्टिकायेन निश्चयः** इति वाक्यात्। पुष्टि हू फलरूप हैं ताते फलप्रकरण में **'षोडश गोपिकानां मध्ये अष्ट कृष्णा भवंति'** याते अष्ट स्वरूप को ध्यान आवश्यक हैं स्वरूप भावना ते फलप्रकरण में प्रमाण प्रमेय साधन फल ये चारो प्रकरण की लीला फलप्रकरण में है। कस्यांश्चित्पूतनायत्या इत्यादि।

तहां यह पूर्वपक्ष होय जो भक्तकृत लीला हैं भगवत्कृत नहीं, ताको समाधान यह जो कृति भक्तन की हैं सो सब भगवत्कृत ही हैं।

"तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः।
तद्गुणानेव गायंत्यो नात्मागाराणि सस्मरुः।"

इत्यादि तच्छब्दकरिके भगवत्लीला जानिये। तहाँ प्रथम स्वरूप भावना पाछें लीलाभावना पाछें भाव भावना करिये। स्वरूप भावना लीला भावना भावभावना, चेति वाक्यात्।।

श्रीनाथजी की भावना

प्रथम स्वरूपं भावना को अर्थ स्वरूपस्थिति भावना, तहाँ श्रीजी स्वरूपात्मक, श्रीभागवत पुस्तक नामलीलात्मक, श्रीभागवत प्रथमस्कंध द्वितीय स्कंध दोऊ चरणारविन्द हैं। तृतीय स्कंध चतुर्थ स्कंध दोऊ बाहु, पंचम स्कंध षष्ठस्कंध दोऊ जंघा, सप्तमस्कंध दक्षिण श्री हस्त, अष्टम

स्कंध नवम स्कंध दोऊ स्तन, दशन स्कंध हृदय, एकादश स्कंध श्रीमस्तक, द्वादशस्कंध वाम श्री हस्त। तहां दक्षिण श्रीहस्तकी मुट्ठी बाँधि अंगुष्ठ को प्रदर्शन करावत हैं, यातें भक्त के मन को आकर्षण करिके वामहस्त उन्नत करिके भक्त को आकर्षण करत हैं।

उक्षिप्तहस्तः पुरूषो भक्तमाकारयत्युत।
दक्षिणेन करेणासौ मुष्टीकृत्य मनांसि नः।
वामं करं समुद्धृत्य हिन्नुते पश्च चातुरीम्।।१।। इति च

और आकारणार्थ ही निकुंज मंदिर के द्वार ठाड़े हैं, उभय विभाग के आच्छादनार्थ ओढ़नी ओढ़े हैं, याही तें पीठक चौखुटी हैं। पंचदृष्टि में सम्मुख दृष्टि हैं।

श्रीनवनीतप्रियाजी को स्वरूप

यहां बालभाव मुख्य हैं। तातें प्रमाणप्रकरण की लीला प्रगट हैं, और प्रकरण की लीला गुप्त हैं, अतएव गुप्त रस को प्रकार बालभाव विषे हैं। निरावृत स्वरूप रसाधायक हैं, याही ते तनीया धोती सूथन काछनी न पहिरें।

जानोतं परमं तत्त्वं यशोदोत्संगलालितम्।
तदन्यदिति ये प्राहुरासुरांस्तानहो बुधाः।।

श्रीहस्तविषे नवनीत हैं, सोई गायन विषें सुधा को जो दान हैं, सो सारभूत नवनीत हैं। श्रीहस्त में राखवे को तात्पर्य यह है कि जो स्वधा संबंध बिना भगवद्भोगयोग्य नहीं।

'यर्ह्यगनादर्शनीय कुमारलीला इत्यत्र अंग नयतोत्संगना।'

भक्त सेवानुकूल हैं, प्रभु कुमार हैं, *कुत्सितोमारोयस्मात्* अतएव मदनगोपाल नाम याही ते हैं।

श्रीमथुरानाथजी को स्वरूप

प्रमेय प्रकरण प्रथमोध्याय की लीला प्रगट, और प्रकरण की लीला गुप्त हैं, अतएव ब्रज में चतुर्भज स्वरूप कौन प्रकार ? नंदकुमार तो द्विभुज हैं, परन्तु पुष्टिस्वरूप में हूँ चतुर्भुज हैं, ताको आशय, पुष्टिकार्य रूप क्रिया चतुष्टय हैं।

१.स्वानंद दान २.स्वानंददान विषे जो प्रतिबंध ताको निवारण ३. स्वसेवा ४.आधिदैविक भाव को परम्परा उद्वोधन।

तहां स्वानंददान तो ब्रज में ही पधारत हैं तब श्रीमुखांमृत लावण्य को पान करावत हैं।।१।।

प्रतिबन्ध को निवारण सो विरहजन्य जो ताप ताको शमन।।२।।

स्वसेवा सन्ध्या भोगादिक को स्वीकार।।३।।

आधिदैविक भाव को परम्परा उद्बोधन सो वन में चतुर्दश रसकी लीला किये सो स्थायी भाव प्रत्येक रसन के प्रगट करि ब्रजीयन विषें उद्बोधन करनों।।४।।

नवरस के स्थायी भाव तो नव होंय, भक्तिरस को स्थायी भाव रति हैं। चतुर्विध पुरूषार्थ के स्थायी भाव अलक हैं, च्यारों अलक में हैं, 'गोरजश्छुरितकुन्तलं इति।" या प्रकार १४ चौदह रस के स्थायी भाव जानिये, और आयुध धारण को आशय, शंख, चक्र, गदा, पद्म या क्रम सो धरें। सो मधुसूदन स्वरूप कहावें, तंत्र में कहे हैं। पुष्टि में तो 'मधुसूदनरूपत्वं गजराज विहारिणः' इति वाक्यात् गजवत् विहारलीला हैं। निचले दक्षिण श्रीहस्त में शंख हैं ताको अवांतार भाव आसुर गर्व निवृत्ति। **विष्णोर्मुखोत्थानिलपूरितस्य यस्य ध्वनिर्दानवदर्यहता इति।**

शंख कहे हैं, तातें आयुध को मुख्य भाव तो ग्रीवा की आकृति। ऊपर दक्षिण श्रीहस्त में पद्म है ताके अवांतर भाव तो जापर धरें तापर चौदह भुवन को भार पर्यो तब दबि जाय, *"भुवनात्मकं कमलं"* इति

वाक्यात्। जैसे काहू पर एक भीति परे तो दबि जाय ताकी कौन व्यवस्था ? तैसे चौदह भुवन पड़े तो कहा कहवे में आवें ? तातें पद्म आयुध हैं, मुख्य भाव तो श्रीमुख की आकृति, ऊपर वाम श्रीहस्त में गदा हैं ताको अवांतर भाव तो अस्त्र को तेज निवारण करत है। *"अस्त्रतेजः स्वगदया"* इति। मुख्य भाव तो भुजाश्लेष हैं। अवष्टंभ हैं निचले वाम श्रीहस्त में चक्र हैं ताको अवांतर भाव तो जाकों मुक्ति देनी होय ताको चक्र सों मारें। **"ये ये हताः चक्रधरेण राजन् इति।"** और मुख्य भाव तो कंकणाकृति हैं।

प्रियाभुजाश्लिष्टभुजः कंकणाकृतिचक्रकः।
कम्बुकण्ठोद्धृतभुजो लीलाकमलवेत्रधृक्।।

मुख्य भाव के आशय को प्रमाण लिखे हैं। दिवस में वन गमन तब होत हैं जब ये पदार्थ भाव सूचक हैं। याही ते आयुध के स्वरूप मूर्त्तिमन्त भगवद्भावाविष्ट पुरुष रूप चार हैं, और मर्यादापुष्टि भेद करिकें ऐश्वर्यादिक के स्वरूप मिलि ६ हैं, याही ते पीठक गोल हैं, मुकुट पर ओढ़नी हैं।

श्री विट्ठलेशराय जी को स्वरूप

फलप्रकरण के द्वितीयोध्याय की लीला प्रकट है और प्रकरण की लीला गुप्त हैं।

'पुनः पुयिनमागत्य कालिंद्याः कृष्णभावनाः' इति वाक्यात्।

कालिन्दी स्व स्वरूप को दर्शन कराये तब भक्तन को भाव स्फूर्ति भई।

भगवान् विरहं दत्वा भाव वृद्धि करोति हि।
तथैव यमुना स्वामिस्मरणात् स्वीयदर्शनात् इति च।

प्रथम मुख्य स्वामिनी विषे आसक्ति भर करिके तद्रुप करिके गौर तो हते ही, फिर श्रीयमुनाजी को भगवद्भावाविष्ट स्वरूप देखिके मोहित भये। तदनन्तर सात्त्विक भावाविष्ट कमल सदृश जो नेत्र तिनके कटाक्ष करिके

श्यामता हू स्वस्वरूप विषें प्रदर्शित होत हैं, तातें गौरश्याम हैं।

स्वामिनीभावगौरस्य स्वस्वरूपं प्रपश्यतः।

कटाक्षैविठ्ठलेशस्य श्यामताचित्रितं बपुः इति।

श्रृंगाररसात्मक भगवत्स्वरूप संयोग वियोग भेद करिके उभयात्मक। विरुद्धर्माश्रय ब्रह्म ते हू गौर श्याम हैं।

रसस्य द्विविधस्यापि स्वरूपे बोधयन् स्थितिम्।

ऐक्यं विरुद्धधमत्वाग्दौरश्यामः कृपानिधिः।।

रस परवश ते ही कटि भाग पर दोऊ श्रीहस्त हैं।

समपादाम्बुजं सूक्ष्मं कटिलग्नभुजद्वयसू।

किरीटिन लसद्वक्त्रं विठ्ठलेशमहं भजे।।

अतएव वाम श्रीहस्त में सच्छिद्र शंख हैं। ध्वनि ते विरूद्धधर्माश्रय भगवत्स्वरूप हैं यह द्योतित करत हैं, और भक्तवृन्द में जो निजांगीकृत हैं तिनको उभय भाव करि गौर श्याम हैं, यह द्योतित करत हैं, अतएव एक चरणारविन्द में आभरण हैं एक में नहीं।

श्रीद्वारिकानाथजी को स्वरूप

प्रमेय प्रकरण की सप्तोध्याय की लीला प्रकट हैं। और प्रकरण की लीला गुप्त हैं। अतएव चतुर्भुज ब्रज में प्रमेय बल करि हैं, रहस्यलीला विषें सखीवृन्द में मुख्य स्वामिनी विराजत हैं, तहां भगवत्संबंधी सखी मुख्य बैठी हैं, इतने में प्रभु पधारे, तब स्वकीय सखी को समस्या सों वरजिके पीछे ते पधारें, दोऊ श्रीहस्त सों नेत्र निमीलन किये, दूसरे दोय श्रीहस्त सो वेणूकूजन करि भाषण किये जो कौन हैं ? यों जताये तो वेणूकूजनते प्रेमोत्पत्ति हैं। 'चुकूज वेणुम्' इति वाक्यात्।

भ्रूवल्लीसंज्ञयादौ सहचरिनिकरं बर्ज्जयित्वा स्वकीयं।

पश्चादागत्य तूष्णीमथ नयनयुगं स्वप्रियाया निमील्य।।

कोस्मीत्येतद्वचनमसकृद्वेणुना भाषमाणः।

पातु क्रीडारसपरिचयस्त्वां चतुर्बाहुरुच्चैः।।

याही ते आयुध धारण को हू प्रकार यहाँ या भांति, निचले दक्षिण श्रीहस्त में पद्म सो प्रिया पाणि हैं, नेत्र निमीलन छुड़ावत हैं, ऊपर दक्षिण श्रीहस्त में गदा है सो प्रिया अद्भुतलीला देखि आश्लेष करत हैं। ऊपर वाम श्रीहस्त में चक्र हैं सो प्रिया के कंकणादिक के स्पर्श ते क्षत सूचित होय हैं। निचले वाम श्रीहस्त में शंख है सो प्रिया के सन्मुख ते ग्रीवा को स्पर्श होत हैं। याही ते यहाँ आयुध के स्वरूप मूर्तिमय चार हैं। प्रिया के आविर्भाव विशिष्ट स्त्रीरूप हैं। अतएव पीठक चौखूँटी हैं, प्रिया विशिष्ट हैं।

श्रीगोवर्धनधर को स्वरूप

साधन प्रकरण की लीला प्रगट हैं और प्रकरण की लीला गुप्त हैं, श्रीगोवर्धननाथजी के उद्धरण को स्वरूप, आपु तो हरिदासवय हैं। जब प्रभु पधारें तब आपते ठाडे होय रहें, तो दास्यधर्मत्वात् और डांडी चाहिये। सो कबहू प्रभु वाम श्रीहस्त में ऊँची करें। जब प्रभु वेणुनाद करें, तब आलंबन सो आश्लेष हैं, तब इन्हीं को दक्षिण श्रीहस्त ऊँचो होत हैं, इनके वाम श्रीहस्त में शंख है, सो अच्छिद्र हैं, ताको आशय, जो शंख है सो जल को तात्त्विक रूप हैं। **'अपां तत्त्वं दरवरमिति वाक्यात्।'** जितनी वृष्टि भई सो ता जलको आधिदैविक यह शंख है, तामें सब वृष्टि के जल को आकर्षण करें, जल को आधिदैविक संबंध भयो, तब भोग योग्य भयो। तातें याको पान कियो, अतएव शंख वाम श्रीहस्त में हैं। झारी बांई ओर ही रहे याही ते इन्द्र को अपराध क्षमाकर प्रसन्न भये। नंदादि प्रभृति भोग सामग्री समर्पे, इन्द्र जल की सेवा कीये, और परिकर सब एकत्र किये, 'न तु ब्रह्मा।' जैसे प्रक्षिप्ताध्याय में वत्सहरणलीलाविषे परिकर भगवान ते जुदो किये, तातें, अप्रसन्न भये, और इन्द्र परिकर इकठौरो किये तथा जल की सेवा किये, तातें प्रसन्न भये, कमल पर ठाड़े हैं ताको आशय, जैसें जल को अनुभव करिके कमल बाहर आयो तब विकास, आमोद, लक्ष्मीनिवास ये तीन

गुणकों आरंभ भयो, तैसे ब्रह्मानंद को अनुभव करिकें बाहिर जब आये तब भजनानंद को अनुभव भयो, तहां इनके अवयव को विकास और वाको रूप जो हैं पुष्प, तिनमें अर्थ सो आमोद, तब प्रभु उत्तरीय पर विराजें। यह लक्ष्मी निवास।

श्री गोकुलचन्द्रमाजी को स्वरूप

फलप्रकरण के चतुर्थाध्याय की लीला प्रगट और प्रकरण की लीला गुप्त हैं। 'साक्षान्मन्मथमन्मथः इति वाक्यात्।' अपने स्वरूपमात्र करिके कंदर्प जो कामदेव हैं ताकों जीते।

सालिकुलं कमलकुलंजितं निजाकारमात्रतो जगति।
प्रकटातिगूढरसभरजितोऽभवत्कुसुमशरकोटिः इति।।

त्रिमंगललित ग्रन्थ हैं सो इन्हीं स्वरूप को वर्णन हैं, तहां त्रिभंग सो तीन अंग वक्र हैं। पद, कटि, ग्रीवा, ये तीन अंग, तहाँ पद तो वाम चरण को स्थापन सो पुष्टि को स्थापन हैं। दक्षिण उन्नत हैं सो मर्यादा को उल्लंघन हैं। यत्किंचित अंगुलिन की स्थिति है ताको आशय जो मर्यादा की रीति हैं सो पुष्टि को आशय करत हैं।

पुष्टिभक्तिस्थितिं कुत्वा मर्यादां च तदाश्रितां **इति** वाक्यात्।

कटि तथा ग्रीवा नमित हैं, यातें जो और पात्र में रस स्थापनों होय तो भरित पात्र नमित होय तब और पात्र में आवें।

रसभरभरितं पात्रं नामितमन्तत्र तं रसं कर्तुम्।

वेणू के रंध्र ७ सात को स्वरूप - धर्म ६, विशिष्ट धर्मी १ दक्षिण श्रीहस्त अभय करत हैं। भजन विर्षे ३ प्रश्न को उत्तर देय। भक्तन के भजन की स्तुति किये, ऐसो भजन किये जो बहुत काल पर्यंत भजन तुम्हारो करिये तोहू पार न आवे। "न पारयेहं निरवद्येति।" तर्जनी को अंगुष्ठ को

स्पर्श हैं। मध्यमा अनामिका कनिष्टिका ये ऊर्ध्व हैं। ये नृत्य को भाव हैं।

यतो हस्तस्ततो दृष्टिर्यतो दृष्टिस्ततो मनः।
यतो मनस्ततो भावो यतो भावस्ततो रसः।।

यह नृत्य सामयिक (नृत्यसमयको) स्वरूप हैं यातें रासोत्सव को प्रकार यहां ही जानिये। वेणुस्थिति दोऊ श्रीहस्त के अवयव मध्य में होय। दृष्टि दक्षिण परावृत्त होय, भूमि पर कृपाअवलोकन हैं। वेणुनाद ५ प्रकार को हैं, तामें यहां दक्षिण हैं। स्त्रीपुरूष सबन को भावोद्‌बोधक हैं।

देवांगना उच्चैरधरितरश्चां वामपरावृत्तो देवस्त्रीणाम्।
स्त्रीणां पुरूषाणां च दक्षिणः समतया सर्वेषामचेतनानाम्।।

या भांत पांच प्रकार को वेणुनाद पंचदृष्टिसंयुक्त हैं, जैसे वेणुनाद पंचदृष्टि युक्त हैं तैसे पृथिव्यादिक की तन्मात्रा हू प्रिय है। तिनको स्वरूप कहा ? (ताको अभिप्राय रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द यह तन्मात्रा तेज, जल पृथ्वी, वायु, आकाश की हैं) ताको स्वरूप, रूप, नील प्रिय है, श्रृंगाररूपत्वात्। **"रसो नवनीतस्य सुधासंबंधत्वात्। गंधस्तुलस्या दिव्य गंधत्वात्। स्पर्शःस्त्रीणां सुधाधारत्वात्। शब्द वेणुको प्रथम सुधाधारत्वात्।।"**

मल्लकाछ को स्वीकार हैं सो गायन को आहवान सुधादानार्थ हैं।

बर्हिणस्तवकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिवर्विडंवः।
कर्हिचित् सबल आलि सगोपैर्गाः समाहवयति यत्र मुकुंदः।।

यह अलौकिक वेष देखिके नदीन को हू स्पृहा भई। *तर्हि भग्नगतयः सरितो वै इति।* वेणुनाद वामाश्रित होय तो करत हैं। ताही ते दक्षिण श्रीबाहू में बाजुबंद नहीं, सिंहासन पर ठाड़े हैं, द्विशिखि तकिया है, सो कटितांई को स्पर्श कियो हैं, सो तकिया नहीं, किन्तु आलंबन उद्‌दीपन दोऊ विभाग हैं। किन्तु ललितत्रिभंग ग्रन्थ के मंगलाचरण में आत्मनिवेदन कह्यो हैं, ताको आशय- जो श्रीमदाचार्यजी को श्रीगोकुल में ब्रह्म संबंध की आज्ञा भई हैं, सो याही स्वरूप करिके हैं।

नमः पितृपदांभोजरेणुभ्यो यन्निवेदनात्।
अस्मत्कुलं निष्कलंकं श्रीकृष्णेनात्मसात्कृतम्।।

और श्रीमधुराष्टक को हू प्रागट्य याही समय के स्वरूप को हैं। पधारत ही ब्रह्मसंबंध की आज्ञा किये सो श्रीमुख को दर्शन पहले ही भयो, याते -

"अधरं मधुरं बदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।१।।

तातें मधुराधिपति हू यही स्वरूप जानिये।

श्रीमदनमोहनजी को स्वरूप

फलप्रकरण की प्रथमोध्याय की लीला प्रगट और प्रकरण की लीला गुप्त हैं। वेणुनाद करिकें भक्तन को आकर्षण किये तब भक्तन प्रति जो कहे -

स्वागतं बो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः।
व्रजस्यानामयं कन्विद्ब्रूतागमनकारणम्।।
रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता।
प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्राभिः सुमध्यमाः।।

ये गमन वाक्य है सो याही स्वरूप करिके हैं। दक्षिण श्रीहस्त की अंगुरी मध्यमा तथा अनामिका इन दोऊन सों करतल को स्पर्श हैं तातें गमन। अभय करत होय तो करतल को दर्शन होय, तब आगम सूचित होय। यह वाक्य श्रवण करि भक्तन को एक बेर तो महाचिन्ता भई। प्रभु कहा त्याग किये ? फिरि वाक्य विचारे, तब सुमध्यमा यह पद हैं, ता करिके भक्तन के भाव देखि मोहित भये यह जाने, तब श्रीमुख देखत ही संपूर्ण श्रीअंग गौर देखे, तब तन्मयता निश्चय भई। ता पीछे चरणारविन्द में पादुका को प्रदर्शन भयो। यह अन्तराल हैं, भूमि को स्पर्श नहीं जो अन्तराय होय ताको स्पर्श समान हैं। जैसे मोजा अंगराग लगाये होय

चरणारविंद कों, तब जो स्पर्श करिये तो स्पर्श को चन्दन को भयो, पर वह अंगराग चरणारविन्द ही हैं। यह अन्तरायमात्र ही है पर अन्तराल नहीं। काहेते ? मध्य आकाश नहीं। तातें पादुका अन्तराल हैं तातें यह वाक्य व्यंग हैं। "वाक्यपर्यवसायी मत हो यह निष्कर्ष" वाक्य मर्यादा हैं। चरणारविन्द साधन भक्ति रूप हैं। तातें मर्यादा जो हैं सो भक्ति संवलित होय तो भक्त स्वीकार करे हैं, और भक्तिसंवलित मर्यादा न होय तब स्वीकार नहीं। तातें यह वाक्य जब श्रीअंग को सुखद होय तब स्वीकार करिये, अतएव दक्षिण चरणारविन्द की अंगुरी को स्पर्श मात्र पादुका को है, ऐसे चरणारविन्द के दर्शन ते दास्य की स्फुर्ति भई, तब फलरूप जो भक्ति श्रीमुख ताको दर्शन भयो, तब दास्यरूप जो धर्म ताके आगे चतुर्विध जो मुक्ति सो तुच्छ हैं। अलकावृत श्रीमुख देखिके सारूप्य मुक्ति को प्राप्त जो अलक, सो भक्ति को आश्रय करत हैं, तब सारूप्य मुक्ति करिके कहा ? दोऊ कुंडल योगसांख्य रूप होय समीप्यमुक्ति को प्राप्त है। यद्यपि अत्यन्त नैकटय हैं, भक्ति को आश्रित हैं, तब सामीप्य मुक्ति ते कहा ? सालोक्य मुक्ति में अक्षरानंदानुभव हैं, सो गंडस्थलयुक्त जो अधरता रस के आगे अन्यरस तुच्छ हैं, तब सालोक्य मुक्ति करिके कहा ? सायुज्यमुक्ति में ब्रह्मानन्दानुभव हैं। सो हास्यपूर्वक जो अवलोकन तामें भक्तिरस हैं, याके आगे ब्रह्मानंद तुच्छ हैं जले निमग्नस्य

जलपानवत् तब सायुज्यमुक्तिसों कहा ?
बीक्ष्यालकावृतमुखं तब कुंडलश्री ।
गंडस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् इति वाक्यात्।।

जब ऐसा भक्तन को भाव देखें हैं, आत्माराम तो हू रमण किये। 'आत्मारामोप्यरीरमत इति।'

यह अष्ट स्वरूप को निरूपण किये हैं, यह आठों स्वरूप धर्मी जानिये, और गोद के ६ छः स्वरूप हैं, तहाँ दशम के सप्तमाध्याय में:-

"यच्छण्वतोपैत्य रतिर्वितृष्णा सत्त्वं च शुध्यत्यचिरेण पुंसः। भक्तिर्हरौ

तत्पुरूषे च सख्यं तदेव हारं वद मन्यसे यदि।"

यहां राजा के पाँच प्रश्न हैं, तहाँ शुकदेवजी कहे, इन लीला के श्रवण पहिलें श्रीमातृचरण को निरोध किये हैं, सो लीला कहत हैं,- सो शकटभंजन लीला हैं। तीन महीना के भये तब औत्थानिक लीला हैं। यह लीला श्रीद्वारिकानाथजी के पास के ठाकुरजी श्रीबालकृष्णजी हैं, तहाँ यह लीला प्रगट हैं, और लीला गुप्त हैं।

और श्रीमथुरानाथजी के पास के श्रीनटवरजी हैं। तहाँ तृष्णावर्त्त के प्रसंग की लीला प्रगट हैं, वर्ष एक के भये हैं, या लीला के श्रवण ते आर्ति को निवृत्ति होय।

और श्रीनवनीतप्रियाजी के पास श्रीबालकृष्णजी तथा श्रीमदनमोहनजी हैं। तहाँ जृंभालीला तथा सत्वशुद्ध यह लीला प्रगट हैं। या लीला के श्रवण ते भक्ति होय, वितृष्णा निवृत्त होय, सत्त्व जो अन्तःकरण ताकी शुद्धि होय। और श्रीगोकुलचन्द्रमाजी के पास श्री बालकृष्णजी तथा श्री मदनमोहन जी हैं। तहाँ उलूखल बन्धन तथा नल कूबर मणिग्रीव को उद्धार किये, यह लीला के श्रवणते भक्ति होय तथा भगवदीयन को संग होय।

या प्रकार ६ स्वरूप गोद के हैं, तिनके स्वरूप को निरूपण किये। भगवत्लीला नित्य हैं, स्वरूपात्मक हैं, तातें ये ६ लीला के ६ स्वरूप कहे। ये लीला प्रमाणप्रकरण के अन्तर्भूत हैं। ताते ये ६ स्वरूप गोद के कहवाये। ताते ये ६ स्वरूप लीला कों विषद करिके "यच्छृज्वतोपैत्य रतिर्वितृष्णा" या श्लोक की सुबोधिनी में कहे हैं। यहां विस्तार के लिये नहीं लिखे हैं। तातें ये अष्ट स्वरूप तथा गोद के ६ स्वरूप दत्तदृष्टि होय के भावना करिये। यहां तांई स्वरूपभावना कहे, जैसी स्वरूप की स्थिति हैं ता प्रकार कहे।

लीला भावना

लीलाभावना जो, लीलास्थ जो भक्त तिनकी भावना तहां प्रथम वामभागस्थ श्रीस्वामिनीजी विराजत हैं तिनको स्वरूप। श्रृंगाररस भगवत्स्वरूप

को आलम्बन विभाव। गौर स्वरूप हैं, सो श्रृंगाररस को उद्बोधक हैं। श्रृंगार श्याम हैं गौर उद्बोधक हैं। "श्यामं हिरण्यपरिधि" या श्लोक की सुबोधिनी में श्रृंगार श्यात हैं गौर उद्बोधक हैं यह कह्यो हैं, अवतारलीला विषे श्रीवृषभानुजी हैं सो मुख्य सुधाकार हैं ताको आधार है। भगवत्प्रादुर्भाव के दोय वर्ष पहिले प्रागट्य है। प्रादुर्भावानन्तर जब दूसरो उत्सब आयो तब सुधा को आविर्भाव भयो। तातें कहें 'जो सुख नन्दभवन में उमग्यो तातें दूनो होयरी।' और 'पाँच वरसके श्याम मनोहर सात बरस की वाला' इन दोऊ कीर्त्तन की या भांति एक वाक्यता हैं, प्रागट्य दोय वर्ष पहिले हैं। भगवत्प्रादुर्भावानन्तर सुधाविर्भाव हैं सो श्रृंगाररसात्मक जो भगवत्स्वरूप तिनकी सारभूत सुधा है। और श्रृंगार श्याम हैं ताते नीलांबर प्रिय है। दक्षिणभागस्थ श्रीस्वामिनीजी विराजत हैं, तिनको स्वरूप श्रृंगार रस स्वरूप जो भगवत्स्वरूप है तिनको उद्दीपन विभाव हैं। आरक्त स्वरूप हैं सो रस को उद्बोधन हैं। गौर स्वरूप श्रृंगार को उद्बोधक हैं। अतएव हाथी दांत के खिलौना वाम भाग रहें, लाल खिलौना दक्षिण भाग रहें, श्याम गौरकी जो उभयत्र प्रीति है सो मूर्तिमंत यह स्वरूप हैं। कीर्तन में हू कहे हैं। 'तटतरंगिनी निकट तरनिक तट मृदुल चंपकवरनी दक्षिन प्रीति वामभाग जोरी कर्वरी।' प्रीति को कथन शबदात्मक है। शब्द को मूल तो वेद, वेदमूल गायत्री। सो गायत्री रूप ब्रह्म आपही होत भये।

'श्रीकृष्णः स्वात्मना सर्वमुत्पाद्य विविधं जगत्।
तदासक्तावबोधाय शब्दब्रह्माभवत्स्वयम्।।
तत्र सर्गादिभिः क्रीडन् नित्यानंदरसात्मकः।
निजभावप्रकाशाय गायत्रीरूप उद्बभौ इतिवाक्यात्।।

तातें गायत्रीरूप हू यही है। अतएव नाम श्रीचन्द्रावलीजी चन्द्र में नियत श्याम कला हैं, गौरकला हैं, यातें नाम यह हैं, और नाम अपर श्रीस्वामिनीजी हैं, सखी नहीं, तातें दक्षिण भाग में सदा ही विराजें, पोढ़ेऊ ऐसें, श्रृंगार हू दोऊ भाग को एक भांति को होय।

श्रीयमुनाजी को स्वरूप

अब श्रीयमुनाजी को स्वरूप कहत हैं, तुर्य प्रिया, सो चतुर्थप्रिया सो या प्रकार कितनेक भक्तन को ब्रजलीला में अंगीकार हैं, जैसें नन्दादिक प्रभृतिन को। कितनेक भक्तन को राजलीला में अंगीकार हैं, जैसे वसुदेव प्रभृतिन को। कितनेक भक्तन को उभय लीला में अंगीकार है, जैसें कुमारिकान को। उत्तरार्ध में 'बलभद्रप्रियः कृष्णः' या अध्याय की सुबोधिनी में कुमारिकान को पुराणंतर संमति देयके द्वारकानयन लिखें हैं, याही ते वहां गोपीचन्दन तो तब भयो जब कुमारिकान को नयन हैं, तैसे कालिंदी चतुर्थप्रिया है, और व्रजलीला में श्रीयमुनाजी हैं।

या प्रकार उभयलीला विशिष्ट हैं, तातें तुर्यप्रिया है। कदाचित् या प्रकार कहिये जो नित्यसिद्धा को एक यूथ १ श्रुतिरूपा को एक यूथ १ कुमारिका को एक यूथ १ श्रीयमुनाजी को एक यूथ १ या प्रकार तुर्यप्रिया जो कहिये तो श्रीयमुनाजी--को अंगीकार पहिले, श्रृतिरूपा कुमारिका को नहीं। श्रीयमुनाजी व्यापि वैकुण्ठ में हैं, इनकी रेणुका की प्रतिनिधि कात्यायनी किये, तब कुमारिकान को साधन सिद्ध भयो, और श्रुतिन को हू दर्शन भयो है। तहां कहत है "यत्र निर्मलपानी या कालिन्दी सरितांवरा।" तातें प्रथम प्रकार सोई तुर्यप्रियातें सिद्ध होत है।

और अष्टसिद्धि है सो प्रभु श्रीयमुनाजी को दिये हैं।

१.साक्षात्सेवोपयोगीदेहाप्ति २. तल्लीलाऽवलोकन ३. तद्रसानुभव ४. सर्वात्मभाव ५. भगवद्वशींकरणत्व ६. भगवत्प्रियत्व भगवत्तात्पर्यज्ञत्व ७. भक्तिदातृत्व ८. भगवद्रसपोषकत्व ।

यह अष्टसिद्धि श्रीयमुनाष्टक के प्रत्येक आठों श्लोक करि निरूपित हैं।

तच्चैश्वर्यमष्टविधम् वस्तुतस्तु अष्टविधानां।
सिद्धीनामैश्वर्य स्वामित्वं तद्दातृत्वं चेत्यर्थः।।
मूलस्थसकलसिद्धिपदस्यार्थेर्याम् तथा च सकलानामष्टविधानामपि।
सिद्धीनां हेतुः, तद्दात्रींति मूलार्थः ताः सिद्धिराहुः साक्षादिति।।
तत्र प्रथमश्लोके रेणूनामुत्कटत्वोक्त्वा आद्या सिद्धिरुक्ता।
द्वितीये ब्रजजनानुगत्युक्त्या लीलावलोकन मित्युक्तम्।
तृतीये तुरीय प्रियात्वकथनेन तृतीयोक्ता।
चतुर्थे समान धर्मकथनेन चतुर्थ सिद्धिरुक्ता।
एतादृशः सर्वात्मभावो येन ताद्रूप्यमेव सम्पन्नमित्यर्थः।।
पंचमे भगवतो वशीकरणं यया, तत्त्वमेतादृशं येन।
वरणपद्मजाप्येतत्समागमनात् प्रिया जातेति पंचमसिद्धिरुक्ता।।
षष्ठे स्वपयः पानमात्रेण यमयातना भावरूपं।
स्वसेवनेन भगवत्प्रियत्वकरणरूपं यच्चाद्भुतचरित्रं।।
भगवत्तात्पर्य ज्ञात्वैगं करोतींति षष्ठी सिद्धिरुक्ता।
सप्तमे तनुनवत्वोक्त्या भक्तिदातृत्वाख्या सप्तमी सिद्धिः।
अष्टमे श्रमजलसंगमकथनेन भगवद्भावबोधकत्वरूपा।
भगवद्रसपोषकत्वमष्टमी सिद्धिरुक्ताषड्गुण विशिष्टधर्मी।।

यह सप्त विधत्व हू हैं। 'अनंतगुणभूषिते' यामे कहे हैं। जलते यमयातना निवृत्ति, रेणुते तनुनवत्व, जलरेणु अधिक फलसंपादक हैं। स्मरणश्रमजलाणुभिः यह जलरेणु हू ते अधिक। जलादपिं रजः पुण्यं रजसोपि जलं वरम्।। "यत्र वृन्दावनं तत्र स्नातास्नातकथा कुतः।" यह अष्टसिद्धि श्रीयमुनाजी को दान किये है इतनोही नहीं, किंतु यह अष्टसिद्धि के दाता हू आप हैं। पहिले श्रीगंगाजी में दर्शनमात्र ते ब्रह्महत्यादिक पातक निवृत्ति को सामर्थ्य हतो चरणस्पर्श ते, श्रीगंगाजी दर्शन ते 'ब्रह्महत्यापहारिणी' इति। और श्रीयमुनाजी के स्मरणमात्र ते पातकमात्र की निवृत्ति होय। *"दूरस्थोपि स पापेभ्यो महद्भयोपि विमुच्यते"* इति। अब इनके संग ते *"मुरारिपोः*

प्रियंभावुका" भई तथा सकलसिद्धि दाता भई। याहीतें अलौकिक आभरण कहें।

तरंगभुज कंकण प्रकट मुक्तिका वालुका।
नितम्ब तट सुन्दरी नमत कृष्णतुर्यप्रियां।।

ये हू स्वामिनीजी हैं सखी नहीं। श्यामरूप हैं सो श्रृंगाररूप हैं इनको हू यूथ पृथक कहें- जैसे श्रीवासुदेव के मूलभूत श्रीकृष्णचन्द्र तैसें कालिन्दी के मूलभूत श्रीयमुनाजी।

श्रीमदाचार्यजी को स्वरूप

श्रीकृष्णचन्द्र के आस्य हैं। प्रभु विचारे जो स्वकी निज माहात्म्य है। सो भूमिविषें दैवीप्रति तुम्हारे प्राकट्य बिनु प्रकट न होइ, ताते तीन प्रकारसों प्रगट होऊ। यह आज्ञा भई, प्रथम तो सन्मुनुष्याकृति ऐसो स्वरूप देखिके प्रेमपूर्वक दैवी जीव शरण आवेंगे, और दूसरी आज्ञा अतिकरुणावंत होऊ, तब दैवी जीवन सूं निकट आयो जाय, तब उपदेश लेइ, और तीसरी आज्ञा हुताश होउ, जे शरण आवें, उपदेश लेत हैं, तब उनके पाप निकसि के गुरूके सन्मुख आवत हैं, जो गुरू तेजस्वी होय, तो दाह करे, यातें हुताश जो अग्नि तद्रुप होय जनके पाप दाह करो। या प्रकार दैवी में जे पुष्टिसृष्टि हैं तिनको आसुरभाव भयो हैं, सृष्टि प्रतिक्रया के प्रारम्भ ही दैवी जीव ते आसुरी जीव जुदे भये, तैसें इन्द्रिय हू दैवी तथा आसुरी भई, तब आसुर जीव हतो सो दैवी जीव पास आयके कह्यो, जो मेरो हू गान करो, तब दैवी जीव कह्यो यो *"यदंशः स तं भजेत्"* मैं भगवदंश हूं, भगवद्गान करूंगो। तब दैवी जीवको पाप वेधन भयो, तब आसुरी जीव दैवी इन्द्रिय पास गयो। उनको भवत्रस्त करिके कह्यो, जो मेरो गान करो। तब देह तो दैवी जीव की नहीं, जो इन्द्रिव प्रविष्ट होय जाय, तब इन्द्रिय समय होय आसुर जीव को गुनगान कियो, तब दैवी इन्द्रियन को पाप वेध भयो। यातें दैवी जीव

शुद्ध तथा देह शुद्ध। इन्द्रियन में द्वैविध्य, आप दैवी, आसुरके गान तें आसुरभाव सहित। यह मूलदोष है। यह निरूपण *"द्वयाह प्रजापत्याः"* या श्रुति में कह्यो हैं। द्वेधा ह्यर्थभेदात् या सूत्र में व्यासजी निरूपण किये है। ऐसे मूल में दोषग्रस्त हैं, यह दोष निवारण तब होय तब तुम्हारो प्राकट्य होय।

और उद्धारक हू वेई, जिनके अलौकिक आभरण होंय, सो अलौकिक आभरण तीन ठौर हैं। श्रीकृष्णचन्द्र विषें हैं। *"उद्दामकांच्यंगदकं कणादिभिः"* उद्दाम जो डोरा तद्रहित कांचा रहें क्यों ? जो यातें लौकिकसूत्राभाव कहे श्रीयमुनाजी विषें कहें।

तरंग भुज कंकण प्रकट मुक्तिका वालुका।
नितंब तट सुन्दरी नमत कृष्णतुर्यप्रियाम्।।

यह दोऊ सिद्धसाधन जो लीलास्थ भक्त हैं तिनके उद्दार श्रीमदाचार्यजी विषें हैं।

अप्रकृताखिलाकल्पभूषितः।
श्रीभागवतप्रतिपदमण्विरभावांशुभूषिता मूर्तिः।

साधनरहित जे दैवी जीव आधुनिक तिनके उद्धारक हैं।

भगवान्विरहं दत्वा भाववृद्धि करोति वै।
तथैव यमुना स्वामिस्मारणात् स्वीयदर्शनात्।।
अस्मदाचार्यवर्यास्तु ब्रह्मसंबंधकारणात्।
तापक्लेशप्रदानेन निजानां भाववर्द्धकाः।।
त्रयाणां सजातीयत्वं सिद्धम्।

आधुनिक भक्तन को उद्धार तब ही होय जब श्रीमदाचार्यजी को दृढ़ आश्रय होय। श्रीमदाचार्य जो भूलोक में प्रकट होय विचारें। भगवदाज्ञा यों है जो दैवी जीवन को उद्धार करो। नवधा भक्ति बिना प्रेमलक्षणा भक्ति नहीं होय। प्रेमलक्षणा भक्ति बिना पुरूषोत्तम की प्राप्ति नहीं होय। नवधा तो एक एक कठिन है। राजा परीक्षित सरीखो होय तब मर्यादामार्गीय श्रवण भक्ति होय। पुष्टिमार्गीय श्रवण भक्ति तो याहूतें आगे हें तहाँ श्रवणादि

सात भक्ति तो भक्तनिष्ठ हैं। दोय भक्ति भगवन्निष्ठ हैं। सात भक्ति तो शरणमंत्र ते सिद्ध हैं।

'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
तस्मात्सर्वात्मना नित्यं इति वाक्यात्।।

दोउ भक्ति की चिन्ता भई। तब श्रावण शुक्ल पक्षकी 11 एकादशी को अर्द्धरात्रि को श्री गोकुल में साक्षादाज्ञा भई।

ब्रह्मसम्बन्धकरणात्सर्वेषां देहजीवयोः।
सर्वदोषनिवृत्तिहिं दोषाः पंचविधाः स्मृताः।।

या करिकें दोय भक्ति सिद्ध भई। भगवद्वाक्य में तीन चरण हैं सो त्रिपदा गायत्री। तातें गायत्री को दृष्टान्त दिये। 'यथा द्विजस्य वैदिककर्मणि गायत्र्युपदेशजसंस्कारवत्।' या दृष्टान्त ते यह अर्थ सिद्ध भयो - गायत्रीमन्त्र वेदिक कर्म हैं, याहीसो पहिले दिन उपवास नहीं, तो निवेदन मन्त्र तो भक्ति बीज हैं ताको उपवास हैं कहाँ ? या पोंन श्लोक में ते निवेदन मन्त्र को आविर्भाव है। देहपदको विवरण है। 'दारागारपुत्राप्तवित्तेहापराणि इत्यादि। देहपद कहे सो सत्तासमर्पणार्थ। श्रावण के देवता विष्णु हैं। तातें महीना वैष्णव कहें, शुक्लपक्ष छोड़ अमल पक्ष कहे सो भगवत्सम्बन्ध जिनको भयो ते मल रहित भये, नाम निर्दोष भये। एकादशी कहें सो एकादशेन्द्रियशोधिका हैं, ताते देहेंद्रिय तो जा दिन आज्ञा भई ताहीतें शुद्ध भई।

अब याको मन्त्रोपदेश तें पहिले उपवास करिके मन्त्र लेनां यह विधि नहीं, किन्तु।

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतमे को देवो देवकी पुत्र एव।
मन्त्रोप्येकस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा।

याके व्याख्यान में लिख्यो हैं तस्य देवस्य सेवा में पूर्व परामर्श को हो तो देवपद क्यों कहे ? ताको आशय, न मनुष्यत्वेन ज्ञातव्य इति देवमिति। जैसे मनुष्य के छुए में देवकी सेवा न करीये, अपरस होय तो करीये।

याको यह निष्कर्ष समर्पण मन्त्र तो बाल्य ते ही लेइ, "अज्ञानादथवा

ज्ञानात्'' या वाक्यते, परन्तु अपने गुरू न पधारे होय तो एकांश समर्पण तो होय चुकयो हैं, दारागारपुत्राप्त पद हैं, तातें एकांश संबंध तो भयो ताते गुरू जब पधारे तब ही शण मंत्र तथा निवेदन मंत्र लेइ, न पधारें तहां तांई न लेई, तो दीक्षा रहित को दोष नहीं, ''एकांशसंबंध'' तो हैं, अपने गुरू छोड़ि और बालक पास उपदेश लेइ तो अपने घर में जो प्रभु विराजत होय तो सो तो जहां को उपदेश हैं तिनके मुख्य सेव्य सातों स्वरूपन में हैं। लड़का प्रभृति को और ठौर उपदशे लिवावें तब मंदिर में कौन से स्वरूप की सेवा तथा भावना करे ? यह अपराध पड़े, और गुरू न पधारे तो सेवोपयोगी कुटुम्ब को उपदेश लिवावें तो और बालक पास लिवावें, तब वाकें यहां प्रभु इन गुरून के मुख्य सेव्य स्ववरूप तिनके भाव सों विराजे, तब वाही प्रकार की सेवा की रीति सो सेवा करें, मुख्य तो जब गुरू पधारें तब ज्ञान भये पीछे लेइ, समर्पण लिये पीछें ज्ञाति में भोजन कियो है ताके लिये उपवास करिके सेवा मे जाय। जब मर्यादा पाले तब उपवास करे। जैसे बाह्या स्नान ते शुद्ध, तैसे उपवास ते इंद्रिय शुद्ध, समर्पण पालवे को अंग उपवास है। मंत्रोपदेश को अंग उपवास नहीं इतने पर हू उपवास करिके न्विेदनमंत्र लेइ तो एकादशी के दिन जो आज्ञा भई, ''एकादशेद्रियशोधिका'' यह विश्वास छूटि जाय।

किंच ब्रह्मसंबंध में तुलसी हाथ में देत हैं ताको आशय। यातें अन्य सम्बध न होय, किंतु भगवत्संबंध ही होय। फेर वाके पास ते मांग लेत हैं, साक्षात्स्वरूप विराजत होय तो चरणारविंद पर धरें। जो परोक्ष होंय तो भावना सों धरिये। ''नान्यसमक्षमंजः'' इति वाक्यात्।

'श्रीर्यत्पदांबुजरजश्चकमे तुलस्या लब्ध्वापि वक्षःस्थलं किल भृत्यजुष्टम्।'

भोग में हू याही ते धरिये। अन्यदृष्टि सम्बन्ध न होय यातें या भाँत, नवधा भक्ति साधन रूप तो दोऊ मंत्रन ते सिद्ध भई, परन्तु फलरूप तो न भई,। ''तातें श्रवणादुर्शनाद्ध्यानान्मयि भावानुकीर्त्तनात्'' श्रवण, दर्शन, ध्यान, मयिभाव, मद्विषयक जो भाव रतिर्देवादि बिषया भाव' इत्यभिधीयते'' भावसो

रति, रति सो प्रेम, तामें ध्यान जो हैं सो तो दर्शन के और प्रेम के मध्य आयो, तातें फलमध्यपाती बन्यो रहे, तीन १.श्रवण २.दर्शन ३. प्रेम ऐसें नवधा में जानिये। १. कीर्तन २. दर्शन ३. प्रेम ४. दर्शन प्रेम ऐसें मध्य की भक्ति में, ऐसें आत्मनिवेदन सम्बन्धी दर्शन आत्म निवेदन सम्बन्धी प्रेम। स्वस्मिन् ज्ञानी प्रयश्यति यह आत्मनिवेदन सम्बन्धी दर्शन और कृष्णमेव विचिन्तयेत् यह विचिन्तन रूप आत्म निवेदन सम्बन्धी प्रेम कहे, यातें, जाको श्रवणादि नवमें दर्शनान्त भयो तहाँ तांई तो मर्यादा, जाको प्रेमान्त भयो तब पुष्टि। तातें दोय मन्त्र करि साधन रूप नवधा भई।

अब जो श्रवणादिक करने सो प्रेमान्त होय तो शुद्धि पुष्टि होय, न करे तो मिश्रभाव रहे, १. मर्यादापुष्टि २.प्रवाहपुष्टि ३.पुष्टिपुष्टि यह तीन मिश्र भाव हैं।

पुष्टया विमिश्राः सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारताः।
मर्यादया गुणज्ञास्ते शुद्धाः प्रेम्णाति दुर्ल्लभाः।

जे पुष्टिपुष्ट हैं तो सेवारत हैं, सर्वज्ञ हैं, सब जानत हैं। सब कहा ? सेवा, कथा, स्मरण, यह तीनों आशय सहित जानें। प्रवाहपुष्ट हैं ते क्रियारत है, क्रिया सो सेवा, यह मार्गरीति सों करि जाने पर आशय न जाने, मर्यादापुष्टि हैं, ते गुणज्ञ हैं, गुण सो कथा तामें रूचि, सेवा में नहीं, यह तीन मिश्र भाव, इनतें भिन्न सो शुद्धपुष्टि सो दुर्लभ है। मुद्ध पुष्टि भई तब निरावरण सेवा होय। अंशावतार के भजन मे सबको अधिकार और पूर्ण पुरूषोत्तम के भजन में समर्पण मन्त्र लिये पीछे अधिकार, या भांति दोय मन्त्र देकें दैवी जीवन को अंगीकार किये तब भगवन्महात्म्य की स्फूर्ति भई। एक तो श्रीमदाचार्यजी को भूलोक में प्राकट्य ताको यह आशय हैं।

अब दूसरो आशय फलप्रकरण में भगवान कहें "न पारयेहं निरवद्यसंयुजां स्वसधु कृत्यं विबुधायुपापि वः" देवता की आयुष्य लेके तुम्हारो भजन कीजिये तोहू पर न आवे। श्रीमुखते आज्ञा किये, परि कृति में न आयो। श्रीमुखते कहे हैं तातें श्रीमुखावतार होय तबही वचन प्रतिपालन होय। यातें

या अवतार तें सेवा किये। सेवा के अधिकारी तो ब्रजरत्ना, इनके भाव को अनुसरण करें, या प्रकार दास्यभाव किये, याहीते कहें - इति श्रीकृष्णदासस्य बल्लभस्य हित वचः।। सेवा कृष्ण की, कृष्णसेवा सदा कार्या इति वाक्यात् पर। ब्रजभक्तन के भावपूर्वक करनी। ताते श्रीकृष्णदासस्य, श्रीयुत जे कृष्ण तिनके दास, जो लीलान की भावना करें, तब प्रभु हू लीलानुकूल बपु धरि वेई भक्त सहित प्रादुर्भूत होंय। "यद्यद्धिया त उरूगाय विभावयंति तत्तद्वपुः" प्रणयसे सदनुग्रहाय इति वाक्यात्

या प्रकार सेवा तथा भावना करत हैं, तातें श्रीकृष्ण के दास और आस्य रूप है। ताते वैश्वानर अग्नि उभयरूप हैं। पूर्ण पुरूषोत्तम को यही लक्षण जो विरूद्धधर्माश्रय होंय। ईश होय सो दास क्यों ? दास होय सो ईश क्यों ? "यथा अपाणिपादो जवानो ग्रहीता तद्वत्।" याहिते श्रीआचार्यन को श्रीअंग नित्य, भौतिक नहीं, यातें दोय आज्ञा न मानें, देहदेशपरित्यागः। देह निस्य, देश ब्रज, दोऊन को कैसें परित्याग होय ? याते तीसरी आज्ञा किये, तामें पहली दोऊ आज्ञा सिद्ध भई, तृतीयो लोकगोचरः सो सन्यास लिये, ताते देहपरित्याग भयो, आसुरव्यामोहलीला समें दशाश्वमेघ के घाट में कटि भाग पर्यंत जल में ठाढ़े रहे, तब सबको ये दृष्टि आयो जो तहाँ तांई ऊँची दृष्टि जाय तहाँ तेज को स्तंभ दीस्यो, जैसे प्रभासलीलाविषे, ताते यह श्रीअंग नित्य हैं, भौतिक नहीं, या प्रकार श्रीमदाचार्यजी को भूलोक में प्रागट्य किये।

दोय आशय ताको स्वरूप, एक तो शेषभाव, एक अशेषभाव, शेषभाव तो 'नमामि हृदये शेषे' यामें दास्य भावको अनुभव करत हैं,। "न पारयेहं" या श्लोक को फलितार्थ सो शेषभाव, और अमेषीभाव तो जनको उद्धरण रूप सो सब बालकत्वावच्छिन्नविष स्थापन किये, भूमि विषे भक्ति जो भगवन्माहात्म्य ताके प्रचारार्थ, अब अशेष माहात्म्य तो बालकन में स्थापन किये ई हैं। और शेष माहात्म्य जो हैं ताको सम्बन्ध जो होय सो भाग्य, यातें शेषमहात्म्य की कृपा करें ऐसो उपाय करिये।

ऐसो श्रीमदाचार्यजी को स्वरूप हैं, मुख्य सुधा पुरूषाकार। "बर्हापीडं नटवरवपुः" या श्लोकप्रतिपादित यह स्वरूप हैं। यहां देहभाव नहीं, रसस्वरूप

है। जैसे देह में वीर्य मुख्य तैसें भगवत्स्वरूप में सुधा। देह में वीर्यसार मस्तक में रहे। यहां सुधा स्वरूप में सार हैं, 'आनन्दसारभूता' सो अधर में स्थित है। लोभात्मक अधर है, यथायोग्य दान करे, या प्रकार भावना करनी।

श्री गुसाँईजी को स्वरूप

"जीवय मृतमिव दासं" यह वाक्य भगवान् कहे, पर कृति में न आयो। जैसे श्रीमदाचार्यजी अग्निरूप होय वाक्पति हैं। तथा "न पारयेहं" या श्लोक के अनुभवार्थ दास्य करत हैं, तैसे यह अग्निकुमार हैं, इनहू विषे दोय धर्म हैं, वाक्पति हैं, तातें दैवी को उद्धार करत हैं, यातें भगवत्त्व हैं। "जीवय मृतमिव दासम्" या रस के अनुभवार्थ वाक्य सत्य के लिये स्वामिनीदासीत्व हैं। "यावंति पदपद्मा नीति" वाक्यात् जैसे "न पारयेहं" याके अनुभवार्थ मदाचार्यजी आज्ञा किये, "गोपिकानां तु यद्दुःखं तद्दुखं खं स्यान्मम क्वचित्।" आप परत्व कहें, तैसे श्रीगुसांईजी किये। *विट्ठलपदाभिधेये मय्येव प्रतिफलतु सर्वत्र सततम्।* मय्येव यामें एकबार कहें, सो आप परत्व कहें तातें मुख्य स्वामिनीको जो दास्यरस ताको अनुभव श्रीगुसांईजी करत हैं, याहीतें अष्टक तथा स्तोत्र प्रगट किये।

निष्कर्ष यह है जो सुधापुरूषाकार रूप श्रीआचार्यजी और सुधा की स्थित वेणु कैसी हैं ? "वश्च इश्च वयौ" तो अणु यस्मात् ऐसी वेणु। 'व' मोक्षनन्द 'इ' कामानन्द ये दोऊ याते अणु हैं, सो तुच्छ है। काहेते ?

सवन्नशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः।
कवय आनतकंधरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः।।

शक्र, इन्द्र, शर्व महादेव, परमेष्ठि ब्रह्मा, यह वेणुनाद श्रवण को आये हैं। पर "अनिश्चित तत्त्वाः कश्मलं ययुः" तत्त्वको निश्चय न भयो मोहको प्राप्त भये। रागको ज्ञान न होयगो सो तो कवि आपही हैं। चित्त दे सुनें न होयंगे सो तो आनत कंधरचित्त हैं, तो आये काहे को ? महादेव तथा ब्रह्मा

को मोक्षानन्द को अनुभव है और इन्द्र को कामानंद को अनुभव है। यहां वेणु है, याके आगे जैसो मोक्षनन्द ऐसो कामानन्द सोऊ तुच्छ हैं, सो देखिवे को आये हैं। जाके आगे दोऊ आनन्द तुच्छ भये सो पदार्थ कैसो हैं ? तथापि हू ज्ञान न भयो। तत्वज्ञान के बिना मोह भयो सुधा ऐसी वेणु में स्थापित हैं, तैसे श्रीगुसांईजी को स्वीकार। श्रीमदाचार्यजी ते उपदेश हैं ताते सुधास्थापन वेणुस्थापन्न श्रीगुसांईजी भये, ताते यहां वेणुवत् मोक्षानंद कामानंद तुच्छ ऐसी देह को स्वीकार, ताते यहाँ बीजं इतनो देहभाव है, परंतु वेणु में शेष भाव को ही दान ,अरू यह अग्निकुमार हैं, ताते देवभोग्या सुधा को दान, यातें भगत्त्व हैं अरू मन्त्रोपदेशकर्त्ता हैं, यह तो भक्तकार्यार्थ आविर्भूत, और स्वकार्यार्थ तो दास्य रसानुभव करत हैं, सो यहाँ शेषभाव यह हैं" स्वामिनीदासत्वम् याते अशेष माहात्म्य जो जनको उद्धरणरूप सो तो सब बालकत्ववच्छिन्न में स्थापन किये, परि शेष माहात्म्य जो मुख्य स्वामिनी दासीत्व यह तो आप विषे हैं। "मय्येव प्रतिफलतु।" ताते ऐसो उपाय करिये जो या शेष माहात्म्य की कृपा करें।

श्रीमदाचार्यजी पुष्टिमार्गको प्राकट्य करि स्थापन किये और श्रीगुसांईजी मार्ग को विस्तार किये, जैसे महाप्रभून के आगें श्रृंगार दोय हते। मुकुट तथा पाग, तैसे श्रीगुसाईजी मुकुट ही में ते सब श्रृंगार प्रगट किये, कुलही बांधिके तीन व पांच चन्द्रिका धरे, तब मुकुट हो हैं, बर्हिनृत्यानुकरण एसो मुकुट हू है तथा कुलही हू हे। प्रभु के केश बड़े हैं सो मध्य के केश की शिखा बांधि आस पास के केश को मेंड करिये, तब गोटी पर भांति भांति के फूल धरि वस्त्र मिहीं ऋतु प्रमाण लपेटे, ओर आसपास के केशकी मेंड हैं सोहू वापर फूल धरि वस्त्र लपेटे, दोय छेड़ा को पटुका लेइ बांई औरते तुर्राके ठिकाने तुर्रा संवारि, पीछे की और दोय पेच देय दाहिनी और जेंवनी पास तुर्रा राखे सो, तब कुलही भई। गोटी लांबी करि देइ तो टिपारो होय, आगे पेच आवे गोटी रहें तो गोटी को दुमालो होय। गोटी न राखिये तो दुमालो गोटी बिना को होय। एक तुर्रा राखिये तो फेंटा होय गोटी तथा एक

तुर्रा राखिये तो गोटी को फेंटा होय। गोटी न राखिये, बीचमें तुर्रा राखिये तो पगा होय, तुर्रा न राखिये गोल तथा मेंड़ राखिये तो तुर्रा विना की कुलही होय। इत्यादि भेद सब कुलही में के है। कुल ही मुकुट को पर्याय हैं। यातें श्रीमदाचार्यजी संक्षेप सब प्रगट किये। श्रीगुसांईजी वाही संक्षेप को विसतार या प्रकार किये, जैसें प्रभु गीता के वक्ता, संक्षेप हैं, विस्तार श्रीभागवत हैं, श्रीमदाचार्यजी सुधारूप हैं, वेणु में आनन्द सारभूत सुधा को स्थापन हैं। "सूधात्रायधारत्वेन वेणुभावापन्न" श्रीगुसांईजी हैं। ताते वेणु हू पुष्टिमार्गीय षड्गुणैश्वर्य संपन्न हैं, 'धन्यास्तीति' श्लोक याते बालकन में गुण को प्राकट्य किये, श्रीविठ्ठल या नामते हू षड्गुण को प्राकट्य हें। सर्वेषामित रसाधनासाध्य भगवत्प्राप्ति संपादन में १. ऐश्वर्य २. कर्मज्ञानोपासनादिजनितदेहादिक्लेशा भावसंपादनं वीर्यम्। ३. पूर्वोक्तं सर्वमनेनैव नाम्ना सर्वत्र प्रसिद्धमिति यशो निरूपिम् ४. श्रीस्तुवर्तत एव ५. विदूज्ञानं ६. ठंशून्यं वैराग्यम्। तानि लाति आदत्ते स्वीकारोतोत्यर्थः। इदं मर्यादामार्गीय मैश्वर्यादिकं सो नामरत्नाख्य की टीका में निरूपण किये हैं, तातें भूमिविषे भक्ति भगवन्माहात्म्य ताके प्रचारार्थ वंश प्रगट किये।

श्रीगिरिधरजी को स्परूप

१. प्रथम ऐश्वर्य गुण को प्राकट्य, अतएव श्रीनवनीतप्रियाजी श्रीमथुरेशजी दोऊ स्वरूप विराजत हैं।

श्रीगोविंदरायजी को स्वरूप। २ वीर्य गुणको प्राकट्य। अतएव विद्वन्मंडन के प्राकट्यविषें श्रीगिरधरजी विज्ञप्ति किये। यह शब्द व्याकरणसिद्ध जान नहीं पड़त। तब श्रीगुसांईजी श्रीगोविंदरायजी को बुलायके कहें, यह शब्द कैसें होय ? जब व्याकरण में सिद्ध हतो सो प्रकार सो प्रयोग साधें, यातें आठों व्याकरण आवत हते।

"इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नः पिप्पलो शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेंद्रा इत्यष्टौ शब्दिकाः स्मृताः।।"

श्रीबालकृष्णजी को स्वरूप। ३ यश गुणको प्रागट्य। ऐसो भक्ति मार्ग

को आग्रह जो विवाहादिक विषें कुलदेव्यादिको पूजन करनो ता ठिकाने श्रीभागवत की पुस्तक को स्थापन किये।

गोकुलनाथजी को स्वरूप

४ श्रीगुण प्राकट्य जब जुदे भये तब जन्माष्टमी आई। स्वसेव्य श्रीगोवर्धनधरजी को पालने बैठाये। श्रीगुसांईजी को हार्द जानें। श्रीनवनीतप्रियाजी पालने बैठे, डोल हिंडोला बैठें, बाललीला पालनो, प्रौढलीला डोल, जैसें बाल स्वरूप पालने बैठें तैसें प्रौढ़ स्वरूप पालने बैठें, यह श्रीगुसांईजी को हार्द न होय तो बालस्वरूप को पालने बैठाये होते। प्रौढ स्वरूप को डोल बैठाये होते, एक ही स्वरूप सब लीलाविशिष्ट हैं।

श्रीरघुनाथजी को स्वरूप

५ धर्मीको प्रागटय जैसें दशमस्कंध में तामस प्रकरण के फलप्रकरण में श्रीपीछे धर्म अध्याय पाछे वैराग्य पीछे ज्ञान। तैसे पांचमें बालक हैं सो धर्मी और कर्म प्राप्त सो ज्ञानगुण को प्राकटय, ज्ञान स्वभाव परिवर्तन करे। याको प्रमाण यह जो इनके प्रभु श्रीगोकुलचन्द्रमाजी सो श्रीगुसांईजी मध्य पधराये। आगें श्रीनवनीतप्रियाजी १, वामभाग श्रीमथुरेशजी २, तिनके आगे श्रीविट्ठलेशरायजी ३, इनकी बराबर श्रीमदनमोहनजी ४, दक्षिणभाग श्रीद्वारकानाथजी ५, आगे श्रीगोवर्द्धनधरजी ६, इनकी बराबर श्रीबालकृष्णजी ७, और ग्वाल के समे श्रीगुसांईजी की आज्ञाते श्रीरघुनाथजी पधारे तब श्रीआचार्यजी को साक्षात् दर्शन भयो।

श्रीयदुनाथजी को स्वरूप

६ वैराग्यगुण को प्राकट्य, फलप्रकरण की रीति बैद्यविद्या स्वीकार करि जगत को उपकार किये, देह निरोग होय तो वैष्णवसों सेवा होय और जो कोऊ सत्कर्म हैं तामें निवेश होय, हरेश्चरणयोः प्रीति वैराग्यम्।

श्रीघनश्यामजी को स्वरूप

७ ज्ञानगुण को प्राकटय, फल प्रकरण का रीति, श्रीगुसांईजी मधुराष्टक

की टीका प्रगट करि श्रीगिरिधरजी कों सोपें, जो श्रीघनश्यामजी अबही छोटे हैं, बड़े होंय तब दीजिये, जिनके लिये टीका का प्राकटय भयो सो स्वभावपरिवर्तन किये, न किये होंय तो विरहानुभव ही होय संयोगानुभव न होय। याते पहिले संयोगानुभव के लिये टीका प्रगट किये।

श्रीगुसांईजी विषें वेणु स्थापित ऐश्वर्यादिकन को प्राकटय है तथा श्रीविट्ठलेश या नाम को निरुक्ति में ते हू षड्गुणैश्वर्यादिक को प्राकट्य हैं, याते एक प्रकार तो सातों बालकन में निरूपण कियें।

अब दूसरे प्रकार को बालकन विषे निरूपण करत हैं। श्रीगिरिधरजी विषें छहों गुण को प्रकटय। प्रथम ऐश्वर्य, तो यह जो सातो स्वरूप श्रीजी साथ अन्नकूट अरोगे यह विज्ञप्ति श्रीगुसांईजी सूं किये। पाछें पधराये, सज्ञान तो सराहेई पर मूढ हू पूजन लगे।

ईश्वरः पूज्यते लोके मूढैरपि यदा तदा।
निरुपाधिकैश्वर्य वर्णयन्ति मनीषिणः।

वीर्य तो यह जो विद्वन्मण्डन के प्राकटय में प्रतिद्वन्दी होय पूर्वपक्ष किये यश तो यह जो श्रीजी अपने श्रीहस्त सो हाथ पकड़े, श्री तो यह जो सब उत्सवन को श्रृंगारादिक येई करें, ज्ञान तो यह जो गोपालमंत्र को स्वीकार किये। वैराग्य यह जो नवलक्ष रूपैया लाड़बाई धारबाई लाई पर आप त्याग किये। छहों गुण श्रीगिरिधर विषे प्रगट कहें, तब एक गुण छहों बालकन में प्रगट और पांच गुप्त।

श्री गोविन्दराय जी विषे ऐश्वर्य, उत्थापन की सेवा नित्य आपु करते, जब स्वपुत्र को विवाह आयो तब इत तो व्याहिवे को चलिवे को समय, ता समें नेत्र भरि आये, तब श्रीगुसांईजी पूछे ऐसे क्यो ? तब कहे उत्थापन को समय हैं, तब आपु आज्ञा दिये सेवा करो, वा समे भक्ति की ऐसी उद्वेक दशा देखिके आपु प्रसन्न भये।

श्रीबालकृष्णजी विषे वीर्य, जब श्रीगुसांईजी के पितृव्य चरण श्रीगोकुल में आयके कहें श्रीबालकृष्णजी को देऊ तो में दक्षिणा में ले जाऊँ, मेरी वृत्ति है सो लेहु, मोकूं तो सन्यास है, नाहीं कहोगे तो ऋण होयगो। ऋणको स्वीकार किये पर चरणारविन्द न छोंडे। तब श्रीगुसांईजी हू प्रसन्न भये। यातें ऋण होयगो तो विदेश जायकें जीवन को उद्धार करेंगे। भूमि में भक्ति प्रचार के लिये ही पिता पुत्र या प्रकार को वंश प्रगट किये।

श्रीगोकुलनाथजी विषे यश है। चिद्रूप माला को प्रतिद्वन्द्वी भयो, तब माला स्थापन किये। यह यश प्रसिद्ध ही हैं।

श्रीरघुनाथजी विषे श्री हैं, तुलसीदास श्रीगोकुल में आये, तब श्रीगुसांईजी सों कहे, सीताजी सहित श्रीरामचन्द्रजी को दर्शन होय यह कृपा करो, तबही रघुनाथजी को व्याह भयो हतो, सो श्रीजानकी बहुजी पास ठाड़े हते, तब आपु आज्ञा दिये जो तुलसीदास कों दर्शन देउ। तब श्रीरघुनाथजी जानकी बहूजी वैसो ही दर्शन दिये। तब तुलसीदासजी कीर्त्तन कहे –

वरनो अवध श्रीगोकुल गाम।
उहां सरजू इहां श्रीयमुना एक ही लख ठाम।

ऐसो श्रीगुसांईजी को आज्ञा को विश्वास। "श्रियोहि परमा काष्ठा सेवकास्तादृशा यदि। तब आपु प्रसन्न होयकें श्रीजी के यहां की गद्दरजी की सेवा दिये। दिवारी के दिन श्रीजी के यहां शयन आरती भये पीछें आरती होय यथाक्रम सातों स्वरूप की ओर की, तब श्रीरघुनाथजी को वारो आर्ती को आवे तब पहलें गद्दर उढ़ावें, परि रहे पीठक के ऊपर, आगे तें थोड़ो दीसे। पीछें आर्ती करे यह रीति।

श्रीयदुनाथजी विषे ज्ञान हैं, मंदिर में जाय मंदिर वस्त्र देते, यह भक्ति मंत्र को फल, आप श्रीगुसांईजी श्रीबालकृष्णजी पधरावत हते सो न लीये, यातें जो श्रीबालकृष्णजी गोद के ठाकुर हैं सात स्वरूप में नहीं, मुख्य स्वरूप आठ ही हैं। "षोडश गोपिकानां मध्ये अष्ट कृष्णा भवन्ति।" यह ज्ञान हैं,

जैसे नदीन में ज्ञान हैं। 'भग्नगतयः सरितो वै।' तैसे इनको हू ज्ञान, एसो स्वरूप को बोध होय गयो। श्रीगुसांईजी हू सात स्वरूप में न पधराये। यातें यह, जो ज्ञान रूप हैं, ज्ञान में भक्ति कहां ? यह ज्ञान को फल।

श्रीघनश्यामजी विषे वैराग्य। जबते श्रीमदनमोहनजी अन्तर्हित भये तब ते विरहानुभव ही किये, श्रीअंगके प्रति चिन्ह लिखें ऐसी तन्मयता।

श्रीमदाचार्यजी के बहूजी श्रीमहालक्ष्मी बहूजी श्रीगुसांईजी के बहूजी श्रीरूक्मिणी बहूजी और श्रीपद्मावती बहूजी। श्रीगिरिधरजी के बहूजी श्रीभामिनी बहूजी, श्रीगोविन्दजी के बहूजी श्रीराणी बहूजी, श्रीबालकृष्णजी के बहूजी श्रीकमलाबहूजी, श्रीगोकुलनाथजी के बहूजी श्रीपार्वती बहूजी, श्रीरघुनाथजी के बहूजी श्रीजानकीबहूजी, श्रीयदुनाथजी के बहूजी श्रीराणीबहूजी, श्रीघनश्यामजी के श्रीकृष्णावतीबहूजी, यह जिन जिनके अर्धांग हैं, तिन तिनके तदात्मकस्वरूप जानिये। यह दश स्वरूप बहुजीन के अलौकिक जानिये।

श्री गोवर्द्धन पर्वत कों स्वरूप

इनको दास्यभक्ति सिद्ध, साधन रूप दास्य हनुमान को फलरूप दास्य श्रीगोवर्द्धन को, यातें हरिदासवर्य श्रेष्ठ हैं। हनुमान को दास्योपयोगी और श्रीगोवर्द्धन को देह तथा देहसम्बन्धी सब पदार्थ भगवदुपयोगी हैं। कन्दरा में छहों ऋतु सानुकूल हैं, जा ऋतु में जैसो निजमन्दिर व शैय्यामन्दिर चाहिये तैसो ही होय। झरना हैं सो जलपान के योग्य, तृण हैं सो आस्तरणार्थ फल हैं सो पुलिन्दी द्वारा उत्थापन भोग की सामग्री सिद्ध होत हैं, इनके संग ते पुलिन्दी हैं भगवदीय भई। 'पूर्णाः पुलिन्द्यः इति' ऐसें भगवदीय हैं, भक्त को लक्षण यह हैं। "आर्द्रार्द्रीकरणत्वं वैष्णवत्वं" जैसें भीजे कपड़ा को सूको कपड़ा लगे तो सूको ही भीजो होय। पुलिन्दी भीलन की स्त्री, यहू भगवदीय भई भगवत्स्पर्श करि पुलकित होय, यह दूसरो लक्षण भगवदीय को, अतएव श्रीगोवर्द्धन में श्रीचरणारविन्द तथा मुकुट तथा श्रीहस्त की अंगुरिन कोह प्रतिफलन होत हैं, सो सात्त्विकाविर्भाव को लक्षण।

श्रीगोवर्द्धन की स्थिति सिंहाकृति हैं, याही ते दण्ड़ौती शिला सो चरण, स्नानशिला सो श्रीमुख।

श्रीगोवर्द्धन भगवद्रूप हैं। 'शैलोस्मीति ब्रुवन् इति वाक्यात्' श्री गोवर्द्धनशिला को हू सेवन आवश्यक हैं जब श्रीगोवर्द्धनशिला पधरावें, तब श्रीगुसांईजी के बालक केश्रीहस्त सों पधरावें, शिला की जो निष्कर्ष भेट होय सो श्रीजी को भेट करें, श्रीगोवर्द्धन के नाथ ये ही हैं। श्रीगोवर्द्धन में धरें नहीं, भेट को प्रमाण नहीं, जो बनि आवे सो धरे, जैसें श्रीयमुनाजी की सेवा को मनोरथ होय तो घाट के ऊपर वस्त्र विछाय, भावना सों पधराय, साड़ी चोली आभरण पहिराय, माला समर्पि भोग धरिये। भोग सराय प्रसाद आपु लीजिये औरकों बांटिये। साड़ी चोली आभरण होंय सो जहां मनोरथ होय तहां श्रीगुसांईजी के घर भेट करिये। या प्रसाद के अधिकारी वेई हैं, प्रवाह में बोरियो नहीं। श्रृंगार (प्रवाह) चलत में न होय। बैंठे जब होय।

यहां सालग्रम होयं तहां उत्सव के जन्म के समें शामग्राम स्नान करें, श्रीगोवर्द्धनपूजा के समें श्रीगोवर्द्धनशिला स्नान कर, और यहां शालिग्राम नहीं तहां जन्म के समय तथा श्रीगोवर्द्धनपूजा के समय सब बेर श्रीगोवर्धनशिला ही स्नान करे। व्यापिवैकुण्ठ में श्रीगोवर्धन रत्नधातुमय हैं। सारस्वत कल्पीय पूर्ण प्राकट्य समय जिनको नंदालय को दर्शन मणिमय स्तंभादिक को होय तिनकों श्रीगोवर्धनहू को ऐसो दर्शन होय। श्रीयमुनाजी की हू सीड़ी रत्नबद्धोमयतटी ऐसो दर्शन होय। और बेर सदा भौतिक दर्शन होंय। भौतिक में आध्यात्मिक भाव करे तो आधिदैविक को आविर्भाव होय। श्रीगोवर्द्धन ऐसे भगवदीय हैं। भगवत्सेवा करिके प्रभुन के साथ जे गाय गोप तिनहू को सन्मान करत हैं। "पानीयसुयसवकन्दरकन्द मूलैः" इति।

ब्रज को स्वरूप

वाराहपुराण में पृथ्वी ने वाराहजी सों पूछो सर्वत्र भूमि हैं तामें आपकों प्रिय भूमि कौनसी ? तब श्रीवाराहजी प्रयाग को प्रसंग कहें, वैकुण्ठनाथ प्रयागको जब तीर्थराज किये, तब तीर्थ सब प्रयाग पास आये,

तीर्थन्न को देखि प्रयाग कहे तुम यहाँ रहो मैं प्रभुन के पास होय आऊं, तब वैकुण्ठ में जाय द्वारपालन सों कहे मैं आयो हूँ यह प्रभुन सो विज्ञप्ति करो। इतने में प्रभु अपुही ते पधारे तब दर्शन भयो। श्रीमुखते आज्ञा भई आवो तीर्थराज, तब प्रयाग विज्ञप्ति किये, यही पूछिवे को आयो हूँ, जो तीर्थराज किये, सर्व तीर्थ आये परन्तु ब्रज नहीं आयो, तब श्रीमुखतें आज्ञा किये जो हम तुमकों तीर्थन के राजा किये हैं, हमारे घर को राजा नहीं किये, ब्रज तो हमारो घर हैं, या ब्रज के वृक्ष वृक्ष प्रति बेणुधारी हूँ पत्र पत्र विषे चतुर्भुज हूँ।

वृक्षे वृक्षे वेणुधारी पत्रे पत्रे चतुर्भुजः।
यत्र वृन्दावनं तत्र लक्ष्यालक्ष्यकथा कुतः।।१।।

या ब्रज में भगवज्जन्म भयो ता करिके ब्रजदेश शोभामान भयो, लक्ष्मी सेवा के लिये निरन्तर ब्रजदेश को आश्रय करत हैं।

'जयति तेधिकं जन्मना व्रजःश्रयत इन्दिरा शश्वदत्रहि'

पृथ्वी तो गोरूप हैं, जैसें गाय के रोम रोम पवित्र हैं, पर दूध चाहिये तब स्तन को आश्रय करत हैं, तब मिलें, तैसें पृथ्वी में जितने तीर्थ हैं, तिनते पापक्ष्य होय परन्तु भगवत्प्राप्ति को जब अपेक्षा होय तब ब्रज का आश्रय करे तब ही भगवत्प्राप्ति होय, श्रुतिनकों जब दर्शन भयो तब ये ही वर दियो। "कल्प सारस्वतं प्राप्य ब्रजे गोप्यो भविष्यथ" ब्रज कमलाकार हैं, यात प्रभु जा स्थल का लीला करिवे के इच्छा किये तब वह पंखुरी संकुचित होय आगे आय गई, तब तात्कालिक पधारे, ऐसे न होय तो नंदगाम ते तालवन पधारें वहाँ चतुर्विध पुरूषार्थ दर्शन की लीला करि धेनुकासुर को प्रसंग सब करि पाछें ब्रज को पधारे।

कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्त्तनः।
स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो ब्रजमाब्रजत्।।१।।

प्रभु सर्वकरणसमर्थ हैं, भक्त की भावना में आवे ऐसी लीला करत हैं, जैसें वृष्टि समें श्रीगोवर्द्धन पास पधारें, तब प्रभु कहा उठावें ?

श्रीगोवर्द्धन आपु होते उठे, दास का धर्म येही हैं, जो स्वामी पधारें तब उठें, यह अन्तरंग भक्त हें, जैसी प्रभु की इच्छा हैं सो जानत हैं। जा प्रकार की स्थिति की इच्छा हैं तहाँ तैसी ही होय। अब या प्रकार की इच्छा हैं सो छत्राक होय गये। छत्र को डांडी चाहिये, तातें श्रीहस्त ऊँचो करत हैं, तातें ब्रजहू लीलोपयोगी कमलाकर है। पूर्ण विकसित होय, अर्ध विकसित होय, संकुचित होय, एक पांखड़ी ही खुले, दोई खुलें, जब जैसी प्रभून की इच्छा तैसें होय। ब्रज में वृक्षादिक हू ऐसें हैं जो ऋतु नहीं और भगवदिच्छा हैं तो पुष्पित फलित होय, और ऋतु भगवदिच्छा नहीं तो पुष्पित फलित न होय। जैसे मल्लिका की ऋतु वसन्त, शरद में कैसें होय ? झरदोत्फुल्लमल्लिकाः। और ब्रज में व्यापिवैकुंठ को आविर्भाव हैं, तातें सब भूमिते ब्रज भूमि श्रेष्ठ हैं। या प्रकार लीलाभावना को प्रकार विचारिये।

भाव भावना

ब्रजभक्तन के भाव सों सेवा, ताकी भावना पहिलें मंदिर को स्वरूप। वेद में ताकी गोलोकधाम कहे, 'यत्र गावो भूरिश्रृंगाअयासः इति श्रुतेः।' पुराण में व्यापिवैकुंठ कहें, गोलोकधाम को। 'ब्रह्मानंदमयो गोलाको व्यापिवैकुंठसंज्ञकः' इति वाक्यात्। सो दोउ एक, और वेद में जाको व्यापि वैकुंठ कहें, पुराण में गोलोकधाम कहें सो रमा वैकुंठ, व्यापि वैकुंठ नाहि। ब्रह्मवैवर्त्त में गोलोकधाम को वर्णन भयो, विरजा नदी कही हैं यह रमावैकुंठ कावेरी में जल है सो विरजा को है।

कावेरी विरजातोयं वैकुंठं रंगमंदिरम्।
स वासुदेवो रंगेशः प्रत्यक्षं परमं पदम् इति।।

यातें वेद में जो गोलोकधाम हैं, सो पुराण में व्यापिवैकुंठ तातें मंदिर सो व्यापिवैकुंठ। यह भौतिक अक्षर और सिंहासन यह आध्यात्मिक अक्षर, गादी व चरण चौकी यह आधिदैविक अक्षर, व्यापिवैकुंठ आधिदैविक, यातें मंदिर को ऐसो स्वरूप जान पहिले दंडौती करि पाछें भीतरि जाय।

"नमो नमस्तेस्त्वृषभाय सात्त्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम्। निरस्तसाम्पातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रस्यते नमः।।"

जैसे मंदिर विषे ताप, रज, जल, इन तीन की निवृत्ति होत हैं, तैसें भगवन्मन्दिर गये तें प्रात रज को दर्शन भयो, वातें ताप जो अन्तः है, ताकी निवृत्ति भई, बुहारी सों मंदिर मार्जन करत हैं, तब यह भाव राखें, प्रभु क्रीड़ा भक्त सहित किये हैं, उन चरणारविंद की रज को स्पर्श या रज को भयो हैं, सौ यह रज उड़िके या देह को लगत हैं, तब तमोगुण की निवृत्ति भई, जब मंदिर धोईये तब जल जो सत्त तातें रजोगुण की निवृत्ति भई। फेर मंदिर वस्त्र स्वच्छ भयो सो स्वच्छ सो निर्गुण, ता करिके सत्त्व को निवृत्ति भई। ऐसी निर्गुण बुद्धि भई तब सेवा की योग्यता भई, ऐसी निर्गुण भक्ति बुद्धिपूर्वक ब्रजभक्त भगवतमंदिर में पधारत हैं, ऐसो मंदिर को भाव राखे, और ब्रजभक्तन को भाव पूर्ण पुरूषोत्तम विषे ही हैं, सारस्वत कल्प में श्रीनंदरायजी के यहां जिनका प्राकट्य हैं, तिनमें ही और में नहीं।

'जानोते परमं तत्त्वं यशोदोत्संगलालितम्।
तदन्यदिति ये प्राहुरासुरांस्तानहो बुधाः'

प्राकट्य को विचार

प्रथम श्रीवसुदेवजी के यहां प्रगटे, सो व्यूह त्रय विशिष्ट पुरूषोत्तम, व्यूह बाहिर, पुरूषोत्तम भीतर, दृष्टांत में पुरूषोत्तम प्राकट्य कहे "प्राच्यां दिशींदुरिव पुष्कलः" इति। "जायमानेऽजने तस्मिन्नेदुर्दुभयो दिवि" यह अनिरुद्ध को प्राकट्य अनिरूद्ध धर्मस्वरूप हैं, धर्म सो दुंदुभि प्रभृति, सो बाजने लगी, और "निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्द्दने" यह सकर्षण को प्राकट्य। तमकी निवृत्ति संकर्षण करिकें हैं, तातें द्वादशाध्याय में कहेंगे **"तमोपहत्यैतरूजन्म यत्कृतम्। देवक्यां विष्णुः प्रादुरासीत्।**

यह प्रद्युम्न प्रकट्य। भाद्रपद कृष्ण ८ बुधे अर्धरात्रि जा समय रोहिणी को चन्द्रसम्बंध, ता समें वसुदेवजी के यहां प्राकट्य। फेर वसुदेव जी तथा देवकी जी स्तुति किये, भगवान सांत्वन किये,- जो तुम मेरे लिये देवता के बारह

हजार वर्ष सूं मनुष्य की एक चौकरी पर्यंत अत्युग्र तपस्या किये, तब में प्रगट होय वर दियो, मनुष्य को वर एक जन्म में फलित होय। देवता जो वर देई सो दोय जन्म में फलित होय। भगवद्वर तीन जन्म तांई फलित होय, तातें तीन जन्म में ही प्रगट भयो, प्रथम जन्म सुतवा पृष्णि, तब पृष्णि गर्भ भये, दूसरे जन्म में कश्यप अदिति, तब वामन जन्म भये, और या जन्म में वसुदेव देवकी, तब यह प्राकट्य भयो, यों कहिके वर दिये, या प्रकार तुम दोऊ पुत्र भाव करिके तथा ब्रह्मभाव करिकें चिन्तन करोगे तो साक्षात् अनुभव करायके व्यापिवैकुण्ठ की प्रप्ति करूँगो। यातें जब श्रीदेवकीजी पुत्रभावना करत हैं, तब स्तन्यकी उद्वेग दशा होत है।, सो इनको अनुभव होत हैं, याही तें उत्तरार्द्ध में जब देवकी जी के पुत्र ६ ल्याये तहां कहे श्रीशुकदेवजी 'पीतशेषं गदाभृतः।'' या प्रकार सो पीतशेष हैं

पीछे वसुदेव देवकी के देखते ही प्राकृत होत भये। यह स्वरूप कौन सों ? ताको विचार लिखत हैं। यह प्राकट्य श्रीनन्दरायजी के यहाँ प्रादुर्भूत भये तिनको जानिंये। आपु तो श्रीयशोदाजी के हृदय में विराजत हैं, वासुदेव तथा माया को श्रीनन्दरायजी को रेतःसम्बन्ध तथा श्रीयशोदाजी को गर्भसम्बन्ध है। पुरूषोत्तम को रेतःसम्बन्ध हू नहीं, जा समय आप प्रगट भये सो वासुदेव को ग्रहण करिके हीं प्रगटे, माया दूसरे क्षण में भई। भगवतप्रादुर्भाव को दूसरो क्षण, सो माया को जनन क्षण। ता समय श्रीयशोदाजी को इतनों ज्ञान भयो जो कछू भयो, पर निश्चय न भयो पुत्र व पुत्री, सामान्य ज्ञान भयो सो कहें।

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत।
न तल्लिगं पत्त्रिश्रांता निद्रयापगतस्मृतिः इति।।

भगवत्प्रादुर्भाव के तीसरे क्षण में विशेषज्ञान हो सो तो माया को दूसरो क्षण भयो, तातें सामान्य ज्ञान भयो, तीसरे क्षण में विशेष ज्ञान भयो, यह शास्त्र की रीति, पहले क्षण में उत्पत्ति दूसरे क्षण में सामान्य ज्ञान तीसरे क्षण में विशेष ज्ञान तैसे माया के पहले क्षण में उत्पत्ति दूसरे क्षण में

सामान्य ज्ञान तीसरे क्षण में विशेष ज्ञान। तातें या प्रकार भयो, श्रीवसुदेवजी को तो दोय घड़ी तांई चतुर्भुज स्वरूप को दर्शन भयो, तिनको अनुभव करि जा समे श्रीनन्दरायजी के यहाँ प्राकट्य ताही क्षण विषें श्रीवसुदेवजी को दर्शन दिये - "बभूव पाकृतः शिशुः'। तब पधरायवे की इच्छा ता समे श्रीयशोदाजी के माया भई, मथुरा ते श्रीवसुदेव जो उत्तम पात्र में वस्त्र बिछाय श्रीठाकुरको पधराय ले चले, पीछे श्रीयशोदाजी के पास पधराये। स्वरूप तो इहाँ प्रगट भयो, सो तो दर्शन मथुरा में दिये, उन्हीं को पधराय लाये। वस्तुतः एक ही है व्यापाक ते मथुरा में दर्शन दिये। मथुरा में दर्शन देवे को प्रयोजन यह- चतुर्भुज स्वरूप को आप विषे अन्तर्भाव करनी हैं, व्यूह को कार्य पड़े तब प्रगट करें। व्यूह त्रय विशिष्ट को प्राकट्य मथुरा में, वासुदेव विशिष्ट को प्राकट्य ब्रज में, यशोदाजी को स्तन्य भयो सो माया कृत तथा वासुदेव कृत हैं, प्रभु स्तन्यपान करत हैं, सो पूतना द्वारा सोरह हजार बालक अपने उदर में आकर्षण किये हैं, उनके निमित्त माया जनित स्तन्य को पान करें हैं, तो बालक-यहं यौगिक अर्थ है, सो "आत्मनः सकाशांजातः" मुग्ध होय तब लीलारस की प्राप्ति न होय, तातें वासुदेवको मोह होन न दिये। यातें केवल पद धरे, केवल माया जन्यं स्तन्यं भगवान् न पिवेत्। और जो वासुदेव जन्य स्तन्य हो ही तो बालकन को मोक्ष होय, सो माया प्रतिबन्ध कीनों, यातें मोह हू न भयो और मोक्ष हू न भयो, एसे भये, तब लीलारस की प्राप्ति भई, और पूर्ण ब्रह्म की रेतः सम्बन्ध नहीं, तब 'नन्दस्त्वात्मज उत्पन्नो' यों क्यों कहे ? ताको निर्णय 'आत्मनः सकाशंजातः आत्मजः' यह यौगिक अर्थ हैं, सो वासुदेव परत्व श्रीनन्दरायजी की बुद्धि हैं, रेतः सम्बन्धत्वात्, और अर्थ जो श्रीनंदरायजी की बुद्धि है, तो पुरूषोत्तम में रेतःसम्बन्धा भावत्वात्, ताते नन्द बुद्धि को भ्रांतत्त्व नहीं, सत्यत्व ही हैं, आत्मज शब्द को यौगिक वासुदेव विषे और गूढ पुरूषोत्तम विषे यह प्रकार जाननो, यातें ब्रजभक्तन को भाव तो पुरूषोत्तम विषे ही हैं, फलरूप आत्मनिवेदन तो रासक्रीडा विषें करनो है। ताते 'आत्मानं

भूषयांचक्रुः' आत्मा को भूषण करें। जैसे आत्मा निर्विकार हैं, व्यापक है, तैसें इनकी देह हू निर्विकार व्यापक हैं। देह नित्य न होय तो जा देह सों ब्रह्मवन्दानुभव ताही देहसो भजनानन्दानुभव न होय। अनित्य देह होय तो ब्रह्मानन्द में लय हो जाय। जैसे इनकी देह निर्विकार हैं और नित्य हैं, तैसे इनको भाव हू निर्विकार है और नित्य हैं।

नित्य सेवा भावना

नन्दालय में प्रातः भगवद्दर्शनार्थ पधारत हैं, तब मातृचरण प्रभु कों जगावत हैं, जो यहां प्रभु जगाये नहीं जागत तब सब ब्रजभक्त अपने अपने गृह आय भाव पूर्वक प्रबोध पढ़िके जगावत हैं। याते श्रीगुसांईजी के बालक ते अतिरिक्त औरकों प्रबोध को अधिकार नहीं, मन्दिर में हू न पढ़े, जैसे ग्रन्थ पाठ करत हैं तैसे प्रबोध पाठ न करें। गोपीवल्लभ तथां सन्ध्या भोग ये दोऊ इनकी ओर के भोग हैं तैसे येऊ भोग श्रीगुसांईजी के घर में हैं, और वैष्णव के यहाँ नहीं। गोपीवल्लभ के ठिकाने श्रृंगारोत्तर श्रृंगार भोग आवें, तथा सन्ध्याभोग के ठिकाने उत्थापन भोग आवें, सामग्री कदाचित धरे ऊपर, परिनाम तो श्रृंगारभोग तथा उत्थापन भोग कहे, कृति नन्दालय की करनी, "सदा सर्वात्मना सेव्यो भगवान् गोकुलेश्वर" इति। ताते कृति नन्दालय की करे। भावना ब्रजभक्तन की करे, इनकी कृति न करें। "स्मर्तव्यो गोपिकावृन्दे क्रीडन् वृन्दावने स्थितः" इति वाक्यात्। जितनी कृतिको अधिकार कृपा करिके दिये हैं, तितनी करे, यथा डोल प्रभृति स्मरण हू को जितनो अधिकार कृपा करिके दिये हैं, तितनो स्मरण हू करे, विशेष भावना तो श्रीमदाचार्यजी स्वपरत्व हू आज्ञा किये हैं।

"गोपिकानां तुय द् दुःख तद् दुःखं स्यान्मम क्वचित्।
गोकुले गोपिकांना तु सर्वेषं ब्रजवासिनाम्।।
यत्सुखं समभूत्तन्मे भगवान् किं विधास्यति ?

उद्धवागमने जात उत्सवः सुमहान् यथा।
वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित्" इति।।

याते निष्कर्ष जो भक्तिमार्ग की मर्यादा यह हैं जो कृति तथा भावना नन्दालय की ही करें, "यच्च दुखं यशोदाया नन्दादीनां च गोकुले" यद् दुःखं यशोदायाः, नन्दआदिपदेन उपनन्दादयः, चकारेण अंतरंगगोपाः तेषां यद् दुःखं, चकारात्सुखमपि, निरोधकार्य, यह भावना करें, और गोपिकांना तु यद् दुःखं, शब्द करिकें पूर्वको व्यावर्तन किये तातें यशोदा प्रभृतिन की भावना करे, और गोपिका की न करे, और "उद्धवागमने जात उत्सव सुमहान् यथा" यह तो विप्रयोग की हैं, सो तो यशोदादिप्रभृतीन की हू न करें, तो गोपिकादिक की कहा ? यातें आप परत्व दुर्लभत्वेन कहें। 'तथा मे मनसि क्वचित्' इति। याते निष्कर्ष यह जो जितनी सेवा को अधिकार कृपा करिके दीये हैं; तितनी सेवा आशय पूर्वक करे, सेवक संपत्ति बिना विदेशादिक जाय तब सेवा न होय, आवे तो सेवा की भावना आशय पूर्वक करनो।

गाय को सुधा संबंध हैं, याते प्रभुको जागिवे को समय जानि, घंटा जो स्थापित बैकुंठ में है, ताकी ध्वनि करत हैं। गाय त्रिविध है, सत्त्व, रज, तम भेद करिके हैं, तीन वेर घंटा बजावत हैं। प्रभु के जागे पहेंले फेरि गोप मंत्ररूप हैं, इनहू को यथाधिकार सुधा सम्बंध हैं, वे शंखनाद करत हैं, गोप हू त्रिविध हैं, तातें ये हू तीन वेर शंखनाद ध्वनि करत हैं, ब्रजभक्त तो पहेले ही सर्वाभरण भूषित होइ, गृहमंडनादिक करि, उच्च स्वरासों गान करत, दधिमंथन करि, नवनीतादिक सिद्धि करि, प्रभु के जागिवे की प्रतीक्षा करत हते, इतने में शंखनाद सुनि नंदालय में पधारत हैं। यहां श्रीमातृचरण जगावत हैं, तब ब्रज भक्त प्रबोध पढ़ जगावत हैं, सूर्योदय समय निद्रा निषिद्ध जानि, श्रीमातृचरण हू जगावत है, तब प्रभु जागि, मातृचरण की गोद में बैठत हैं, तहां ऋषिरूपा प्रभृति बालभोग धरत हैं, तब श्रुतिरूपा प्रभृति दर्शन करि, आप अपने घर आय, भावना पूर्वक

बालभोग धरत हैं, पाछें मंगला आर्ती के दरशन कों पधारत हैं, यहां मंगला आरती भये पाछें नित्य तो तप्तोदक सों स्नान, और अभ्यंग के दिन फुलेल उबटना लगाय के तप्तोदक सो स्नान कराय, फेर केसर लगाय, फेरि तप्तोदक को स्नान। हाथ को सुहातो उष्णजल राखीये। 'कहा ओछी व्हे जात' इत्यादि भावना। बालक हैं, ऊठि न भाजे तातें कछु भोग पास राखत हैं, श्रृंगार भये पाछें गोपीवल्लभ भोग ब्रजरत्ना को मनोरथ हैं, पाछें ग्वाल में तबकड़ी हैं सो भावात्मक हैं, पाछे डबरा को भोग आवे, श्रृंगार भोग आवे तो भावना पृथक्, जो पालने बैठे तो एक प्रकार येहू हैं, गोपीवल्लभ प्रभु की ओर को, राजभोग के ४ भेद हैं, १ घर को - 'जेंवत नंद कहात इक ठोर' २. वनको छकिहार चार पांच आवत मध्य ब्रजराज ललाकी। ३.न्योते को वृहद भोग को प्रकार ५६ भोग। ४.निकुंज का 'जेमत रंगमहल गिरिधारी' यह चार भेद कहें। बीड़ी, आरसी अनोसर उत्थापन भोग। श्रीगोवर्द्धन हरिदास वर्य को प्रेषित पुलिंदी फलादिक ल्याय अन्तरंग भक्तन को देत है, वां समे प्रतीक्षा करि, जगाय, भोग, अंगीकार करावत हैं, गोपमंडल-को पधरावत हैं, तब पुलिंदीन कों अलौकिक दर्शन तथा अनुभव भयो। श्रीगोवर्द्धन हरिदासवर्य भगवदीय श्रेष्ठ के संग तें। फिरि गोप मंडली में पधारि, श्रीबलदेवजी तथा बड़े गोप वे गायन के आगे, मध्य गाय पाछें प्रभु तथा अंतरंग गोप, मार्ग में संध्याभोग स्वीकार करत हैं, तहां 'हांक, हटक, हटक' इत्यादि कीर्तन को भाव। काहू सों हाँ करी काहू सों ना करी' या उक्ति में दक्षिण नायकत्व में न्यूनता आवें, तातें यहां भक्त द्विविध हैं, दर्शनाभिलाषी हैं, तहां खंडिताद्योतक हैं, तहां दर्शनाभिलाषी को तो हां करि और खंडिता के द्योतक हैं वे कहें, कालि की रीति, ता प्रति ना करी यह हां करी, सिंघद्वार पधारे तब संध्या आरती मातृचरण करत हैं, मंदिर में पधार सिंगार बड़ो करि, रात्र को सिंगार स्वीकार करि, यह सेवा अधिकारी जे हैं तिन कृत।

'गताध्वतः श्रमौ तत्र मंजनोन्मर्दनाभिः।
नोवीं वसित्वा रूचिरां दिव्यस्त्रग्गंधमंडितौ।।इति।।

फेरि ग्वाल स्वीकार करि तहां "निरखि मुख ठाडो हँसे" इत्यादि भाव, फेरि शयन भोग। दूसरो भोग यह सेवा श्रीरोहिणीजी के कृत, श्रीमातृचरण अरोगावत हैं, आचमन मुखवस्त्र, पाछें श्रीनन्दरायजी को चर्वित तांबूल लेत हैं। जैसे मंत्ररूप गोप, तिनकी छाक समय झूठन बाधक नाहीं। तैसे विशुद्ध सत्त्व करि, पदार्थ सिद्धि होइ तो प्रभु अंगीकार करें, तैसें श्रीनन्दरायजी विषे जानिये, शयन आर्ती पाछें पोढे, तहां झारी २ बंटा, सेनभोग को बीड़ा, पुष्पमाला पास रहे, और दुपहर की प्रसादी माला हाथ में लेइ आंखिन को लगावे, तब यह भाव राखें जो माला यश को प्रसारित करत हैं, जैसे पुष्पगन्ध, ताको दान भयो, तब यश को दान भयो, फेर आंख सों लगावे, तब ज्ञानेन्द्रिय के स्पर्श ते यश को ज्ञान होय, यश के दान ते लौकिक में जहां आसक्ति होय तहां ते छूटि भगवदासक्ति होय। "यशी यदि विमूढानां प्रत्यक्षासक्तिवारणात्"-इति। या प्रकार प्रत्यूह को यतकिंचित् भाव लिखे।

जन्माष्टमी को भाव

पंचामृतस्नान पीछें अभ्यंग स्नान, श्रृंगार में केसरी वस्त्र, लाल जड़ाव के आभरण, सुधा को आविर्भाव भयो हैं वर्ण गौर है, सो श्रृंगार को उद्‌बोधक हैं, ताते केसरी वस्त्र, उभयत्र प्रीति को हू आविर्भाव वाही दिन, तातें लाला आभरण, लाल वर्ण हैं, सो श्रृंगार में जो रस, ताको उद्‌बोधक हैं, 'श्याम हिरण्यपरिधि' याकी सुबोधिनी में निरूपित हैं, श्रृंगार भये पाछें तिलक भेट, आर्ति यह सो मांर्कन्डेयपूजावत हैं, याही ते श्रृंगारोत्तर भोग में ओट्‌यो मीठो दूध में गुड़ के टूक तथा सेत तिल डारने वामें कटोरी वा चमचा, ऐसो दूध भोग धरनो ऐसी रीत हैं।

'सतिलं गुड़संमिश्रमंगुल्यर्धं शृतं पयः।
मार्कन्डेय महाबाहो पिबाम्यायुः समृद्धये।।

यह नन्दालय को भाव, यह लीला तांई जन्मदिन की लीला कहें, फेरि नित्य विधि, अर्धरात्रि ते जन्मलीला महाभोग आये पाछें छट्ठी पूजे। सो छट्ठे दिन मुहूर्त आछो न होय तो जन्म के दिन पूजे, ताते पूजत हैं, पालने बैठावने तथा कपड़ा आवे सो खिलौना की तबकड़ी में बंटा में धरने यातें जो श्रीनन्दरायजी के सगे संबंधी पालने बैठे ताके समय आवें झगा टोपी को वस्त्र तथा हाथ पाँव के चूड़ा को रोक, यह सौभाग्य को प्रभु हमको अधिकार दीये हैं, यह भाग्य, या प्रकार को मान सेवा करे तो, भागवत्प्रदुर्भाव साथ ही सुधाविर्भाव हैं। तातें नौमी के दिन पहलें दिनकों श्रृंगार रहें, और नन्दालय में प्राकट्य नवमी हैं, तब तो नवमी जन्म दिन भयो ही, इतने अस्वनक्षत्र में दशमी के दिन यहू श्रृंगार होय। आभरण को नेम नहीं वस्त्र को नेम। और जन्माष्टमी के दिन उत्थापन भये, भाग धरि सज्या के वस्त्र घड़ी कर धरने, सज्जा और ठौर धरनी, रात्रि को सैज्या न रहे, फिर नवमी के दिन दोपहर को बिछे, यातें 'अहीरन की जो, एहि रीति दोइ राति जागें' जन्मदिन को तथा देवकाज को दो, यह रीति जन्मदिन के राति जगे में जाको जन्मदिन ताको जगावनो। देवकार्य के रातिजगे में जो बड़ो होय सो जागे, यातें जो यह जन्मदिन को रातिजगो है, तातें शैया न रहे और प्रबोधिनी के दिन तुलसी के व्याह को राति जगो हैं, सो देवकाज है, तातें वा दिन श्रीनन्दरायजी मुख्य जागें, प्रभु तो जागे हूँ पोढ़े हूँ, याते शैय्या रात्रि कों बिछी रहे तथा शैय्या भाग प्रभृति हू रहे, और जन्माष्टमी कों शैय्याभोग तथा रात्रि के बीड़ा सिंघासन पास रहें।

दूसरो उत्सव भगवत्प्रादुर्भाव ते दोय वर्ष पहले आविर्भाव। जब जन्माष्टमी भई पीछे उत्सव आयो, तब श्रीवृषभानजी नन्दरायजी को निमन्त्रण करि बुलाये, तब सब आये, तहां प्रभु तो उत्सव को ही वागा पहिरे, जन्माष्टमी को सुधाविर्भाव भयो, यहां सुधाधार को आविर्भाव भयो। यहां सुधाधार को आविर्भाव भयो, ताते यहां केसरी वस्त्र नये हैं, प्रभु को कुलही मात्र नई होय तो आछी, तुर्रा वेई रहें, गोटी तथा धारी को वस्त्र

नयो होय, और जन्माष्टमी को श्वेत कुलह ही होय तहाँ तो दूसरे उत्सव को केशरी होय। जहाँ श्रृंगारोत्तर तिलक होय तहाँ जन्मदिन को भाव, जहाँ राजभोग आयवे के समें तिलक होय तहाँ सुधा स्थापन को प्रादुर्भाव, आधाराधेय एक भये, जहां राजभोग आर्ती पीछे तिलक तहाँ जन्म समे को भाव, प्रहर दिन चढ़े प्रागट्य हैं तातें पंजीरी तथा दही भात तथा खाटो भात तो होय। अठमासा को भोग, महाभोगवत्, यह राजभोग के संग भोग आवें।

दानलीला मुकुट काछनी को श्रृंगार, मुकुट उद्बोधक हैं, काछनी में घेर हैं, सो सबन को एकत्र करत हैं, श्रीहस्त में वेत्र हैं सो यष्टिका हैं, यष्टिका ब्रह्मा हैं। "यष्टिका कयलासनः" इति। ब्रह्मातें उत्पत्ति हैं, तैसें वेत्र, सो दान के लेवे के अनेक प्रकार के जे तरंग तिनकी उत्पत्ति करत हैं, प्रभु सुधा सम्बन्ध बिना अंगीकार न करें, तातें गौ में जो सुधा को स्थापन ताको दान माँगनो सो भक्तन के अवयव द्वारा अनुभावार्थ दानलीला हैं।

वामनद्वादशी कटिमेखला जो क्षुद्रघंण्टिका, ताको अवतार, भूरूप कटि हैं, ताको आभरण सो कर्मरूप हैं। कर्म को अधिकार भूमि पर ही हैं। क्रियाशक्ति को आविर्भाव हैं, याही ते क्रिया शक्ति जो चरण ताको विस्तार किये हैं।

भक्तिमार्ग में यह उत्सव मानत हैं, ताको आशय वैष्णव को विष्णुपंचक व्रत करने, पाद्मोत्तरखण्डे द्वारका माहात्म्य समाप्तौ।

"गोविन्दं परमानन्दं माधवं मधुसूदनम्।
त्यक्त्वा नैव विजानाति पातिब्रत्यब्रतः शुचिः।।१।।
कृष्णजन्माष्टमी रामनवम्येकादशी ब्रतम्।
वामनद्वादशो तद्वन्नृहरेस्तु चतुर्दशी।।२।।
विष्णुपंचकमित्येवं व्रतं सर्वाघनाशनम्।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं विष्णुपंचकमेव हि।।३।।

न त्याज्यं सर्वथा प्राज्ञैरनित्यं सर्वथा वपुरिति" एकादशी २४ मिलि १.

जन्माष्टमी १. रामनवमी १ नृसिंहचतुर्दशी १ वामनद्वादशी ये विष्णुपंचक व्रत करने। किंच पुष्टिमार्ग में भक्त दुःख निवारणार्थ जो आविर्भाव सो मान्यो चाहिये, तहाँ मत्स्यावतार वेद के उद्धारार्थ प्रगट, कूर्मावतार चतुर्दश रत्नार्थ प्रगट। वाराहवतार ब्रह्मा सृष्टि काहे पर करें तातें भूमि के उद्धारार्थ प्रगट, भूमि भक्त हैं ताते उद्धार यह कारण नहीं, किन्तु ब्रह्मा सृष्टि काहे पर करें ? भूमि भक्त हैं तातें उद्धार तो पूर्णावतार विषें, नृसिंहावतार जो प्रहलाद सो भक्त तिनको क्लेश सह्यो न गयो तातें प्रगट। यह उत्सव मान्यो चाहिये, यह प्राकट्य भक्तोद्धारार्थ है। वामनावतार यद्यपि इन्द्र की स्थिरता को बलि को छलिवे को पधारे, परन्तु राजा बलि कों आत्म निवेदन भक्ति भई तातें यह हू भक्तार्थ प्राकट्य, यह उत्सव मान्यो चाहिये। परशुरामावतार दुष्टक्षत्रनाशार्थ प्रकट। श्रीरामावतार चतुर्व्यह सहित प्रगट, व्यूहांतर्गत प्राकट्य, ताते मर्यादा पुरूषोत्तमावतार तें यह उत्सव मान्यो चाहिए। श्रीकृष्णचंन्द्र प्राकट्य में, व्यूह चार जुदे प्रगट। बलदेवावतार भूमिभारनिराकरणार्थ प्रकट। बुद्धावतार में कलिकालानुरूपतें पाषंड के वक्ता। कल्क्यवातार में तों दुष्ट म्लेच्छ विनाशार्थ प्रगट, यातें यह निष्कर्ष, श्रीराम तो मर्यादा पुरूषोत्तम हैं, तातें उत्सव मान्यो चाहिये। श्रीकृष्णावतार तो पुष्टि पुरूषोत्तम यातें मुख्य हैई। यह उत्सव तो सबको मूल हैं, यह उत्सव अवश्य माननो ही, जे सारस्वतकल्प में प्रगट भये तिनकों, ऐसे तो प्रति कलियुग कृष्णावतार हैं सो पूर्ण नहीं। इनको उत्सव माननों।

प्रसंग ते इनके व्रत को निर्णय लिखियत हैं। निबंधांतर्गत सर्व

निर्णयः-

'अत्र वैष्णवमार्गे वेदमार्गविरोधो यत्र।
तन्न कर्त्तव्यं यद्ययमनित्यो धर्मो भवेत्।।
नित्येऽपि वेदविरोधः सोढव्य इत्याह।
'शंखचक्रादिक' मिति, सार्द्धश्लोकद्वयमिति शेष।।

निर्गुणभक्तियुक्त जो पुष्टिभक्तिमार्ग, ता विषे वेदविरोध न करिये।

वेदविरोध सो वेद में नहीं कह्यो सो न करनो। जो अनित्य धर्म होय तो, अनित्य धर्म दोय, नक्षत्र के योग करके जयंति १ तथा सकाम १, ये दोऊ अनित्य धर्म वेद में नहीं कहें, ते न करने, और नित्य धर्म हैं, सो करनो। नित्य धर्म दोय उत्सव १ तथा निष्काम ये करनो। अढ़ाई श्लोक ताही को निर्णयः-

"शंखचक्रादिकं धार्यं मृदा पूजांगमेव तत्।
तुलसीकाष्ठजा माला तिलकं लिंगमेव तत्।।
एकादश्युपवासादि कर्त्तव्यं वेधवर्जितम्।
अन्यान्यपि तथा कुर्यादुत्सवो यत्र वै हरेः।।
वन्हिनैव तु संयुक्तं चक्रमादाय वैष्णवः।
धारयेत्सर्ववर्णानां हरिसालोक्यकाम्यया"।।

"तप्तमुद्राधारणं काम्यं, काम्य धारण करिये ते अनित्य धर्म को स्वीकार होय, तो वेदविरोध बाधक होय, यातें मृदा मुद्राधारण करिये। 'शंखचक्रादिकं धार्यं-मृदा पूजांमेव तत्' इति वाक्यात्। मृदा धारण न करिये तो बाधक है।

"शंखादिचिन्हरहितः पूजां यस्तु समाचरेत्।
निष्फलं पूजनं तस्य हरिश्चापि न तुष्यति।।

शंखादि चिन्ह धारण बिना पूजा में जाय तो पूजन हू निष्फल होय, तथा हरि हू प्रसन्न न होय यातें पूजा को अंग जानि अवश्य धारण कर्त्तव्य हैं।

अब कहत हैं, पूजा को अंग हैं, सेवा को तो अंग नहीं, पुष्टिमार्गीय को तो सेवा आवश्यक हैं। तहाँ कहत हैं, *सेवा मुख्या न तू पूजा'* मन्त्रमात्रपूजापरो न भवेत्। सर्वपरिचर्या सेवा, वस्त्र धोवे तहां ताई सेवा, अति बहिरंगता हि सेवा, तामें जा सेवा को काल को अनुरोध हैं सो पूजा, यह पुष्टि मार्ग में सेवा तथा पूजा को भेद, काल को रोध जा सेवा को सो पूजा, जैसें मंगल भोग, मंगला आरती, यह प्राप्त ही होय। शयनभोग शयन

आरती यह साँझ ही होय, यातें प्रधान भोग हैं, ताकी आवृति होय, तो अंग कौन हैं ? आचमन, मुखवस्त्र, वीटिका ताहू की आवृति होय। जो भोग नहीं तो आचमन वस्त्रमुख काहेको ?"प्रधानावृत्तावंगान्यावर्त्तते" इति, प्रधान ही अंग हैं, "मृंदा पूजांगमेव च' इति वृत्तौ हेतुमाह "एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वाऽि पूजयेत्, "तैसें शंख चक्रादिकधारण पूजा को ही अंग हैं, 'मृदा पूजांगमेव च' इति एवकार कहें, जब मन्दिर में जाय तब षट्मुद्र धारण करें, जो सहज न्हानो होंय व विदेशादि में तब मुद्रा धारण सर्वथा न करे, परन्तु यों कह्यो हैं "ऊर्ध्वपुंडंत्रिपुंडं वा मध्ये शून्यं न कारयेत्" ताते ऊर्ध्वपंडं शून्य न राखनो, संप्रदायमुद्रा धारण करे ।

"संप्रदायप्रमुक्ता च मुद्रा शिष्टानुसारतः।
यथारूच्यथवा धार्या न तत्र नियमो यतः।

संप्रदाय 'श्रीगोपीजनवल्भाय' यह अवश्य धारण करनी। या उत्तमांग में धारण करे यह शिष्टानुसार हैं, हृदयपर्यंत उत्तमांग चक्रवत् मध्यमांग में नहीं। 'उच्चैश्चत्वारि चक्राणि इति च। ५ मुद्रा को पूजा में धारण हैं, सो संप्रदाय मुद्रा को नेम नहीं, उत्तमांग में यथा रूचि धारण करें। 'यथारूचि तथा धार्या' यामें अथवा पद हैं, सो पक्षांतर हैं, ताते या मुद्रा को नियम नहीं जो पूजा के ही अंग में धारण करे, जब स्नान करे तब धारण करे, तिलक शून्य न राखनों, तातें टीकी देनी याको वचन नहीं, और संप्रदाय मुद्रा को तो अथवा पद करिके धारण हैं, यातें संप्रदाय मुद्रा तो सदा धारण करे, और षट्मुद्रा तो सेवा में जाय तब धारण करें, यातें सक्राम तें सप्तमुद्रा को त्याग, निष्काम ते गोपीचंदन करिके धारण करें।

किंच और माला, वामें हू तुलसी की माला धारण करें, भगवान कों प्रिय हैं, वा शुद्धकाष्ठ को धारण करें, जामें काहू देवता को भाग नहीं, सो शुद्धकाष्ठ वैष्णव हैं "वैष्णवा वै वनस्पतयः" इति श्रुतेः। याते ये दोऊमाला निष्काम हैं, तातें धारण करे, तथा जपहू करें, और माला रूद्राक्षभृति सकाम हैं, तातें स्वीकार नहीं, वेद विरोध बाधक होय, और तुलसी को तथा शुद्ध

काष्ठ की माला धारण न करें, तो बाधक हैं।

"धारयंति न ये मालां हैतुकाः पापबुद्धयः।
नरकान्न निवर्त्तते दग्धाः कोपाग्निना हरेः।"

याही तें आज्ञा किये 'तुलसीकाष्ठजा माला धार्या यज्ञोपवीतवत्' मालापि धार्या। यज्ञोपवीत माला में यह भेद, यज्ञोपवीत टूटि जाय तब और ही पहिरे, और माला टूटि जाय तो मणिका काढि गाँठि बाँधि लेइ वही माला काम आवे।

किंच तिलक ऊर्ध्वपुंड्र करे। भगवच्चरणारविंद को आकृति करे। यह निष्काम तिलक, और तिलक सकाम, यातें अनित्य धर्म सो वेदविरोध, यातें निष्काम सो हरि मंदिर।

"ललाटे तिलकं यस्य हरिमंदिरसंज्ञकम्।
स वल्लभो हरेरव नीचो वाप्युत्तमोपि वा" इति।।

इतने तिलक भगवच्चरण च्युत भये तातें सो तिलक धारण न करिये।

"वर्तुलं तिर्यगच्छिद्रं हरस्वं दीर्घतरं तनु।
वक्रं विरूपं बद्धाग्रं भिन्नमूलं पदच्युतम्।"

वर्त्तुलं गोल १, तिर्यक् त्रिपुंड्र २, अच्छिद्रं ऊर्द्धपुंड्र चीरे बिना ३, हरस्वं छोटो ४, दीर्घतरं नासिकातम् ५, तनु अति पतरो महीन ६, वक्रं वांका ७, विरूपं एक लकीर मोटी एक पतरी ८, बद्धाग्र ऊपर तें बंध्तो ९, भिन्न मूल भ्रोंह के मध्य दोऊ लकीर जुदी १०, इतने तिलक भगवच्चरणारविद ते छूटे याते यह तिलक सकाम, ते न करने, ऊर्ध्वपुंड्र निष्काम, यही तिलक करनो।

किंच एकादशी में दशमी को बेध न आवे ऐसी करनी, तहाँ वेध ४ चार प्रकार को। ४५ को एक, ५० को एक ५५ को एक ५६ को। एक प्रथम स्पर्शवेध १, द्वितीय संग वेध २ तृतीय शल्यवेध ३ चतुर्थ बेधबेध ४।

"पंचपंचाशता शल्यवेधः षट्पंचाशताः मत।

स्पर्शादिकचतुरो बेधान् बर्जयेद्वैष्णवो नरः।"

यातें ४३ घटी ५६ पल तांई वेध नहीं ४४ पूर्ण भई और या ऊपर जितने पल ४५ के हैं यह स्पर्शवेध १, ऐसे ४८ घटी ५६ पल तांई वेध नहीं, जब ४६ पूर्ण भई और या ऊपर जितने पल सो ५० के हैं, ये संगवेध २। ऐसे ५३ घड़ी ५६ पल तांई वेध नहीं, जब ५४ पूर्ण भई और या ऊपर जितने पल सो ५५ के हैं, यह शल्य वेध। ऐसे ५४ घटी ५६ पल तांई वेध नहीं, जब ५५ पूर्ण भई ता पर जितने पल सो ५६ के हैं, यह वेधवेध ४। या प्रकार चार वेध युग भेद व्यवस्था सों मानिये।

"स्पर्शादिचतुरो वेधाः सुप्रसिद्धा कृते हि वै।
संगादयस्तु त्रेतायां शल्यादौ द्वापरे कलौ।।"

स्पर्शवेध सत्युग में १, संगवेंध त्रेता में २, शल्यवेध द्वापर में ३, बेधबेध कलियुग में ४। यही निष्कर्ष लिखे, षट्पंचाशद्वेध रहितं कर्त्तव्यं, पूर्वमन्यथाकरणेपि भगवनमार्गे प्रबेशाननतरं पच्च पंच्चशद्घटिका दशमी चेत्तदा एकादशी त्याज्या। यातें कलियुग में ५६ को बेध मानिये। जबही ५५ दशमी भई, तब वह एकादशी न करें सकाम ते न करिये। वेद विरोध बाधक होय ताते, बेध ५६ को, वेध न आवे सो निष्काम, ऐसी एकादशी २४ करिये।

किंच जन्माष्टमी में ७ सप्तमी को बेध न आवे ऐसी करें, याको अरूणोदय वेध नहीं, किन्तु सूर्योदय वेध हैं। "उदयादुदया प्रोक्ता हरिवासरर्जिता" इति वाक्यात्। यातें अष्टमी सहित नौमी नो, नो जन्म तिथि है, माया को जन्मी नवमी में कह्यो हैं।

'नवम्यां योगनिद्राया जन्माष्टम्यां हरेरतः।
नवमी सहितोपोष्या रोहिणी बुधसंयुता"

सूर्योदय में सप्तमी एक पल हू होय सो न करिये, बाधक हैं,

"पलवेधेपि विप्रेन्द्र सप्तभ्या चाष्टमी युता।

सुराया बिंदुना स्पृष्टं गंगाभः कलशं यथा''

सूर्योदय समे सप्तमी होय, पीछे अष्टमी भई, और दूसरे दिन कछू अष्टमी होय, यह बिद्धाधिका कहिये, ऐसी होय तब दूसरे दिन को उदयात् अष्टमी करें, और अष्टमी को सांध्या भयी तब दोऊ दिन अष्टमी उदयात् हैं, यह शुद्धाधिका कहिये। ऐसी होय तब पहले दिन करिये, पहली उदयात् न करे तो ३२ अपराध में निवेश होय। अविद्धभगवद् व्रत त्याग, वेध रहित भगवद् व्रत को त्याग न करिये, और दूसरी उदयात् अष्टमी को व्रत करे तो तिथि मल हैं, सूर्य ६० घडी को भोग किये ता पीछे घड़ी रहे सो मल हैं, यह घड़ी एकट्ठी होय तब तीसरे वर्ष मलमास आवत हैं, तातें वा महीना में उत्सव न करनो। तैसे ये शेष घड़ी रही, तिनमें उत्सव करें तो मल होय, एकादशी तो मल में करें, बाधक नहीं, और कछु मल में न करें।

''पष्टिदंडात्मिकायास्तु तिथेर्निष्कक्रमणं परे।
अकर्मण्यं तिथिमलं विद्यादेकादशीदिने'' इति ज्योर्तिनिबंधवाक्ये।।

ऐसे अष्टमी को क्षय भयो तहाँ उदय काल तो सप्तमी में है, अष्टमी वाही दिन है, दूसरे दिन तो शुद्ध नवमी है, यह विद्धान्यूना कहिये। तातें सप्तमीसंयुक्त जो जन्म तिथि हैं वामें तो उत्सव होय नहीं, जैसे गंगाजल को घट भर्यो है, और वामें मदिरा को छींटा पड़े तो सब घट अपवित्र होय तैंसें सप्तमी को पलहू को स्पर्श अष्टमी कों होय तो मदिराबिंदुस्पर्शवत्।

यह निष्कर्ष जो अष्टमी मुख्य हैं, नवमी अंग हैं बाही में व्रत उत्सव करें, परन्तु जन्म तिथि सप्तमी संयुक्त में सर्वथा न करें। करें तो साकाम तें वेद विरोध बाधक होय, तथा रोहिणी को जो मुख्य मानि के व्रत करे तो जयंति होय, तोहू वेद विरोध बाधक होय, यातें शुद्ध करनी।

किंच रामनवमी को संपूर्ण व्रत करें, ''रामनवमी प्रभृति व्रतानि भगवन्मार्गे कर्त्तव्यानि।'' जब नवमीविद्धा अधिका होय तब दूसरी करे, शुद्धाधिका होय तब प्रयोग करे, विद्धान्यूना होय तब अष्टमी विद्धा करे, या व्रत को दूसरे दिन पारणा आवश्यक हैं, और भांति करे तो सकाम बाधक

होय तब वेद विराध वाधक होय, किंच नृसिंहजयंती तथा वामन जयंती ये दोऊ जयन्ती व्रत तो 'रामनवमीप्रभृतिव्रतानि' या प्रभृति कहे ते समाप्त भये, परन्तु इन दोऊन कों व्रत संपूर्ण नहीं, यातें भिन्न हैं, 'नृसिंहजयन्तीव्रतमुत्सवश्चेत् कर्त्तव्यं" तथा वामन जयन्तीउत्सवकरणे' तातें उत्सव पर्यन्त व्रत करें, जन्म तांई उत्सव, फिर तो नित्य की रीति, जा काहू कों शयन आरती पीछें नृसिंहजी को वेष बनाई तथा राजभोग आरती पीछे वामनजी को वेष बनाय दर्शन करनो होय अथवा द्वितीय स्कंधोक्त भावना करनी होय, यह अवतार मेखलाप्रभृति के हैं, तातें उत्सव पूर्ण नहीं भयो। नृसिंहजी कों वेष भावना करनी होय तो रात्रि कों पारणा न करे, तैसे वामनजी को वेष वा भावना करनी होय तो पहिले एकादशी के दिन फलाहार करें, द्वादशी को उपवास करें। "एकादश्यामुपोषणमकृत्वा द्वादश्यामुपोषणं कर्त्तव्यं।" निष्कर्ष यह, यहां उत्सव मुख्य हैं, व्रत तो मुख्य हैं नहीं, भोजन कीये पीछे उत्सव करनो निषिद्ध हैं, भगवदावेश न आवे।

'किंम्बहुना उत्सवः प्रधानभूतः,
भुक्त्वा चोत्सवो निषिद्ध, भगवदावेभावात्।'

यावत्पर्यन्त उत्सव तहां तांई व्रत करे। उत्सव होय चुक्यो और व्रत करे तो अनित्य जो जयन्ती व्रत ता आपत्ति करिके वेद विरोध वाधक होय। यातें यहां तांई आग्रह राखिये जो देह नीको नहीं, तोहू उत्सव होय चुक्यो तब कछू खाइये। आग्रह न राखिये, तो वेद विरोध बाधक होय।

'सम्पूर्णोपवासे तु अनित्यजयन्तीव्रतत्वापत्या वेद विरोधो बाधको भवति।'

इन दोऊ जयन्तीन को सम्पूर्ण उपवास तो गोपालमन्त्र को अंग हैं, जो गोपाल मंत्र न लीये होय और सम्पूर्ण व्रत करें तो वेद विरोध बाधक होय, यातें 'शंखचक्रादिकं धार्यं' याके आभास में कहे,

'अत्र वैष्णवामार्गे वेदमार्गविरोधो यत्र तन्न कर्त्तव्यं अद्यनित्यो धर्मो भवेत्।'

'नित्येपि वेदविरोधः सोढव्य इत्याह, सार्द्धश्लोकद्वय' मिति शेषः।'

अश्विन सुदी १ प्रथमपर्व, यव बोवनें, दशमृतिका पात्र में जुदे जुदे वोवे, प्रतिदिन नवीन अंकुरित होय, तातें नित्य सामग्री नई राजभोग में समर्पनी, ये सात्विकादिक नव भेद करि नवमी तांई सगुण भक्त कों नवांकुरी भाव हैं।

अश्विन सुदी १० दशहरा समुदाय को भाव है। पर निर्गुण को मुख्य, याही ते श्वतकुल ही, श्वेत तास को वागा, साडी, दिवारी के तास तें हलको तास होय, तास न होय तो श्वेत छापा को। छापा न होय तो श्वेत मलमल को, दश प्रकार को भाव तातें जवारा समर्पिके माठ दश भोग धरें, तैसे दश गोवर के पूर्वा करि पांच टिपका तथा मध्य पीरे अक्षर प्रत्येक पूर्वा के ऊपर धरे, प्रभु जवारे पहर चुकें तब जवारा पूर्वा पर डारें, जैसें ब्रह्मा पृथ्वी कों थापे तब सृष्टि अंकुरित भई। तब दश प्रत्येक भाव कों स्थापन कीये। सिन्दूर अक्षत फरि पूजन किये सो उभय स्वामिनी वर्ण विशिष्ट अनुराग युक्त कियें। फेर प्रभु को जवारा समर्पि जवारा इन पर धरे तब अंकुरित भगवद्धिशिष्ट भये।

आश्विन सुदी १५ रास की, अष्टभगवत्स्वरूप, षोडश, भक्त या प्रकार के अनेक मण्डल, अलौकिक चन्द्र को लौकिक चन्द्र में निवेश, मध्याकाश पर्यंत गमन, तहां तांई दोय दोय भक्त एक एक भगवत्स्वरूप, या प्रकार की लीला। फेरि अर्धरात्रि पीछें लौकिक चन्द्र को प्रकाश, तहां जितने भक्त तितने भगवत्स्वरूप। यह लीला और प्रकार की, रात्रि अलौकिक हैं, जो कुमारिकान को वस्त्राहरण लीला विषे दिवस में रात्रि दिखाये, सो श्रुतिरूपा साधन सिद्ध हैं, इनको व्यापिवैकुण्ठ में नित्यलीलास्थ भक्तन को दर्शन भयो, तहां वर भयो, "कल्पं सारस्वतं प्राप्य ब्रजे गोप्यो भविष्यथ" और ब्रह्मा गोपीजन को स्वरूप कहें तथा इनकी भक्ति हू कहें - "न स्त्रियो ब्रजसुन्दर्यः पुत्र ताःश्रुतयः किल। नाहं शिवश्च शेषश्च श्रीश्च ताभिः समः क्वचित्' इति, ये साक्षात् श्रुतिरूपा हैं, साधरण स्त्री नहीं, इनकी भक्ति समान और काहू की भक्ति नहीं, ब्रह्मा, शिव शेष लक्ष्मी ये सबकी भक्ति

को स्वरूप, ब्रह्मा, शिव को गंगासेवन द्वारा चरण सेवन भक्ति, शेष को नाम द्वारा कीर्त्तन भक्ति, लक्ष्मी को वनमालाऽर्पण द्वारा अर्चन भक्ति। इन सबन को मर्यादा भक्ति और व्रजभक्तन को फलरूप आत्मनिवेदन भक्ति, तातें इनकी भक्ति सबनतें श्रेष्ठ हैं, ऋषिरूपा साधन साध्य भक्त, यातें व्रतचर्या में दिवस में अलौकिक रात्रि को दर्शन कराये और श्रुतिरूपान को तो व्यापि वैकुण्ठ कों दर्शन कराये, तातें और साधन रह्यो नाहीं। ऋषिरूपान को तो कात्यायनी द्वारा अर्चन भक्ति, श्रुतिरूपान कों पुष्टिव्यसनरूपा आत्मनिवेदन भक्ति। यातें कुमारिकान की भक्ति ते श्रुतिरूपान की भक्ति श्रेष्ठ हैं।

कार्तिक वदी १३ धनतेरस- हरे तास को वागा तथा चीरा हर्‌यो ऐसी साड़ी। श्याम पीतरंग करिके हर्‌यो होय। श्याम श्रृंगार गौर उद्‌बोधक, गौर सो पीत जब हर्‌यो भयो, तब श्रृंगारोद्‌बोधक भयो। और हू तास को बागा होय तो श्यामतास एकादशी के दिन पहिरे। पीत तास द्वादशी के दिन पहिरें, धनतेरस के दिन हर्‌यो तास पहिरें, गोपी वल्लभ में फेनी पोरी करे, भाव के उद्‌बोधक को आधिक्य चाहिये। जैसें उदय समय को पूर्णचन्द्र।

कार्तिक वदी १४ रूपचतुर्दशी- अभ्यंग फुलेल उबटनों लगाय चुकें तब कुंकुम को तिलक करि, पोरे अक्षत लगाय, बीड़ा पास धरि, मुठिया चार बारि, चूना की आरती करिये। हाथ धोय बीड़ा सिंगार की चौकी पर धरि, तप्तोदक सों स्नान कराय, फिरि केशर लगाय स्नान कराय, अंग वस्त्र करि लाला तास कों बागा प्रभृति श्रृंगार, निरावृत श्रीअंग में फुलेल पर उबटना लगाइये। सो स्नान समे की आरती के समे कहू श्यामता कहू पीतता दर्शन होय। सो पहिले दिन एक होय के अन्यवर्ण होय गयो बागा को सो या समें दोऊ वर्ण पृथक पृथक व्यक्त दर्शन देत हैं। श्रीअंग में यहू भाव उद्‌बोधक भयो। तातें आरती आवश्यक हैं, लाल तास को बागा सों उद्‌बोधक को अनुरागयुक्त करें, तास हैं यातें किरण प्रसरित भई। ऐसो दर्शन जिन भाग्यशील भक्तन को भयो तिनको दिवारी के समें की चतुष्पदिका के भाव को बोध भयो। या बागा द [illegible] अनुरागयुक्त हैं, तथा रजोगुण से

स्मरोद्‌बोधक हैं, और दिवारी को वागा निर्गुण हैं, तथा आनन्द को धर्म तम श्वेत हैं, सो लयात्मक हैं। किंच फुलेल स्नेह ते संयोग और उबटना रूक्ष ते वियोग उभयदलात्मक स्वरूप सम्पूर्ण श्रृंगाररूप एकाकालावच्छेदेन स्नान समें दर्शन भयो, तब तिलक करें सो जय पताका, मध्य पीरे अक्षत करि उद्‌बोधक मीन केतु भयो। बीड़ा दो २ धरें सो दलद्वय को तृतीयपुमर्थ को समर्पण। मुठिया ४ वारें सों लौकिक चतुर्विध पुरूषार्थ काल्पात आर्ती कीये सो चारि जोति करि चतुर्विध जें भक्त तिनके अवलोकन द्वारा सम्पूर्ण श्रीअंगानुभव भयो। छह बेर वारें सो षड्‌गुणैश्वर्य लीला सहित जो बहिर्दर्शनार्थ प्रादुर्भूत, तिनको प्रत्यंगानुभव भयो, शीघ्र वारें सो निरावृत को अवलोकन शीघ्र ही हैं, और यातें वेगि वेगि वारिये सो बात्सल्य ते शीत को समय हैं, बीड़ा भोग्य है सो श्रृंगार की चौकी पर धरें, तप्तोदकसों स्नान सों तमलयरूप हैं, तातें श्रम निवृत्ति द्वारा लीलांतर को उद्‌बोधक हैं, केशर लगाय के स्नान होय सो तो केशर रज, तप्त तम, जल सत्त्व, त्रितम भक्त को उद्‌बोधक भयो। स्वच्छ तें निर्गुण को हूँ भयो, परि सत्त्व आगें हैं, तातें सर्वथा तम कों ही मुख्यता चाहिये। आनन्द को धर्म तम ही हैं, यातें फेरि अंगवस्त्र करनो सो जल सत्त्व हैं, ताको रंजक हू अंश न रहे, वामें अंगवस्त्र ऐसें करिये, सुखद सों प्रत्यवय में तें जलांश की निवृत्ति होय। सूक्ष्म अवयव होय तो अंगवस्त्र को बाती करि फिरावे, फिर श्यामस्वरूप होय तो फुलेल समर्पि अंगवस्त्र करनों सो "स्नेहयुक्त दलितांजन चिकणः" ऐसा स्वरूप सिद्ध करनो। स्निग्धनीरद श्याम में ते जल के और गौर स्वरूप होय तो स्नेह ऊपर ही वर्णसाम्य ते प्रगट हैं। तब काहें कों स्नान ? पीछें फुलेल लगावें, अंगवस्त्र करे, मनको भाव विदित करिवे कों प्रयोजन नहीं, वैश्य हैं उहां वर्षा के लिये स्वयंहृत प्रभृति हू लीला विशेष हैं, और अंतर तो श्याम वा गौर द्विविध को समर्पनी ही, अधिक सुगन्ध ते स्नेह व्यसनात्मक हैं, लाला तासको बागा नखशिख अनुराग युक्त करि, हीरा के आभरण सो शुक्र को रत्न हैं, अनन्दसारभूत पदार्थ को स्थापन, तेज तें उद्‌बोधक हैं, सामग्री मालपूआ यह जुदे, बूरा

बिना सुस्वाद नहीं, तैसें अधर संबंध होय तबही वकार को आविर्भाव होय, "वकारस्य दंतोष्ठयं:" वकार अमृत बीज हैं।

"प्रादुर्भवति वकारस्त्वदधरपीयूषदशनसंयोगात्,
तेनामृतबीजत्वं युक्तं प्राणप्रिये तस्य" इति स्वरूप प्राकट्य हैं।
ताते रूपचतुर्दशी, काम स्थिति चौदस को चरण में हैं, ताते ऐसी भक्ति बिना यह पदार्थ तो गुप्त हैं।

दिवारी, रूपहरी तास को बागा, साडी, कुलही श्वेत सूतरू, तुर्रा किनारी लाल, सूथन लाला अतलस की वा दरियाई की, लाल पटुका निर्गुण अनुराग युक्त, दीवडा, गोपाल वल्लभ शयन आरती चौपड़ की सिंहासन पर होय, पीछे हटड़ी बैठवें कों पधारे। शैया के आसपास सूको लीलो मेवा तथा मिठाई तथा दीवड़ा सामग्री में, चौपड़ की चोकी के पास विराजवे को चौकी शैया के बीच बीड़ा को थार, तामें अंगराग की कटोरी तथा चोवा छोटी कटोरी में तथा बरास, पास फूल की माला, प्रभु पधारे, चौकी पर बिराजें तब सगरे घर के भेट धरें, सो भेट बाँटि के चौपड़ के आस पास धरिये आर्ती चौपड़ को होय, पीछें श्रृंगार बड़ो इतनों होय, हार माला, गुंजा चन्द्रिका क्षुद्र घंटिका बाजूबंध चौकी पदक पान और दूसरी ठौर हू बड़ो हार तथा क्षुद्रघंटिका पीछे पोढाईये, सिंहासन बिछयो राखिये, शैया ते लेके सिंहासन ताई पेड़ो बिछाइये, पीछें बाहर निकसिये, चौपड़ को भाव, तामें गोटी १६ षोडश प्रकार के भक्त हैं सात्त्विकसात्त्विक, सात्त्विकराजस, सात्त्विकतामस, राजसराजस, राजससात्त्विक, राजसतामस, तामसतामस, तामसराजस, तामससात्त्विक ये नौ भये। सत्, चित्, आनन्द मिले १२ भये। चतुर्विध भक्त, नित्यसिद्धा में चार भेद हैं। वामभाग १ दक्षिण भाग १ ललिता प्रभृति १ तुर्य्यप्रिया १ यह व्यापि वैकुण्ठ में, और अवतार लीला विषे या प्रकार चतुर्विध हैं नित्य सिद्धा १, श्रीयमुनायूथ १, अन्यपूर्वा १, अनन्यपूर्वा १६, मिल सत्त्व के भेद के ३ तथा सत् यह श्यामरंग के वस्त्र पहरे हैं। रज के भेद के ३ चित्त के १ ये ४ लाल रंग के वस्त्र पहिरें हैं। तम के भेद के

३ तथा आनन्द ये ४ श्वेत वस्त्र पहिरे और चतुर्विध जे भक्त हैं, सो भगवद्भावविष्ट हैं, विपरीते, तब इनमें स्ववर्णपीत हैं, भगवद्वर्ण श्याम पीत वर्ण दोऊ एकट्ठे हैं, ये ४ हरे वस्त्र पहिरें मिले १६ भये। पासा ३ हैं, सो तीनों सुधा सों क्रीड़ा, देवभोग्या १ भगवद्भोग्या २ सर्वभोग्या ३। पासा प्रति १४ अवयव हैं, विद्या हू चौदह हैं, १४ विद्या में निपुणयुक्तता जतावत दान करत हैं, ताही ते ३ विवेक सों दान। खण्ड ६६ हैं सो बन्ध ८४ और बन्ध जैसें आधार तैसें शक्ति हू १२ बारह हैं।

"श्रिया पुष्ट्या गिरा कांत्या कोर्त्या तुष्टयेलयोर्जया।
विद्ययाऽविद्यया शक्त्वा मायया च निषेवित।"

येहू शक्ति हैं, तातें आधार हैं, मिले ६६ छानवें भये, खेल में प्रभु के सन्मुख दक्षिण भाग और वाम भाग के सन्मुख तुर्य्य प्रिया हैं, लाल रजोगुण युक्त ते प्रभु को यूथ। हरयो उभय प्रीति युक्त हैं, तातें दक्षिण भाग को यूथ हैं, श्यामवर्ण प्रिय हैं तातें वामभाग को यूथ श्वेत निर्गुण हैं सो तुर्यप्रिया को यूथ हैं, चार को एकत्र यूथ सो यातें "विभावानुभावव्यमिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति" विभाव २ अलंबनविभाव १ तथा उद्दीपन विभाव १ तथा अनुभाव १ व्यभिचारी भाव १ तातें चार को यूथ।

राग कन्हरो

"एक अनुपम अदभूत नारी।
नैन बैन चौबीस चौगुने सोरह चरन वदन हैं चारी।।१।।
चतुरानन सों प्रीति तीन पति ताकें इकईस दूने नैन।
श्याम श्वेत आरक्त हरित पद चलत तब बोलतहीं बैन।।२।।
राजस सात्त्विक तामस निर्गुण एक, युग्म दरशन को आवत।
मग्न भये सायुज्य मुक्ति फल त्रिविधरूप देखें सचु पावत।।३।।
इह विधि खेल रच्यो ब्रजमण्डल दीप दिवारी प्रगट दिखाई।
तुर्यरूप के यूथ विराजित छवि पर "द्वारकेश" बलि जाई।।४।।

सात्त्विकादिवत जो रस भेंद हैं, सो मेवा मिठाई के रस को आस्वाद। अंगराग, चोवा बीड़ा, कपूर वर्णसाम्य करि चतुर्विधमुक्ति क्रीड़ा। दीवडा आकृति साम्य के। भेट सों होड़ सो हौंस, हौंस सो क्रीडा की उत्कंठा। आरती हू चौपड़ की बारे, सी रसपरवशत्व सहित मोहित होय, भाव वारे।

अन्नकूट की भावना

अन्नकूट उत्सव, मंगला आरती को रात्रि के वागा को दर्शन होय, तातें ओढ़ि के विराजे, श्रीमुखही को दर्शन होय, रात्रि की लीला गोप्य हैं, तातें वागा को आच्छादन आरती तांई गोप्य हैं, वाही वागा पर श्रृंगार होय। यह मुख्य पक्ष और यहू पक्ष हैं। जो वागा बड़ो करि स्नान करें, फिर यही वागा पहिरे, कुल ही सेत, तुर्रा लाल मूतरू किनारी, रूपहरी गोकर्णाकार, रात्रि खेल में लाल गोटी आपुंकी हैं ताको भाव सूचक लाल तुर्रा हैं, तथा श्रीहस्त में पीताम्बर हैं, सोऊ नारंगी रंग को दरियाई को बा केशरी दरियाई कों। अन्नकूट के भोग में अनसखड़ी भोग प्रभु के आगें। निपट आगें माखन मिश्री राखिये। सखड़ी भोग अनसखड़ी के परे। प्रौढ़ भाव के भक्त अग्रेसर हैं, तातें अनसखड़ी पास हैं, कोमल भाव के सलज्ज हैं। तातें सखड़ी दूरि हैं। सन्ध्या आरती पीछे सिंगार बड़ो होय, तब कुल ही रहें। तुर्रा बड़ो करिये।

भाईदूज अभ्यंग- वागा सूथन लाल पाट दरियाई वा अतलसके। हरयो चीरा सिंगार भये पीछे भोग में खिचड़ी, घी, संधानो, दही, पापड़ कचरिया प्रभृति। राजभोग में दही भात, अधकी में कछु अन्नकूट की सामग्री में ते राखिये। सो गोपाल वल्लभ राजभोग आय चुके पाछे तिलक आरती पाछे थार सँवारिये, अवतार लीला विषें ऋषिरूपान का कोमल भाव- व्यापि वैकुण्ठ में श्रीयमुनाजी सम्बंधी भाव जल क्रीड़ा तें शीत सम्बन्धी पाटको वागा तथा उष्ण भोग। श्रम ते शीतल भोग।

गोपाष्टमी - मुकुट काछनी कों श्रृंगार, अभ्यंग नहीं, यातें जो दानलीला की एकादशी तथा रास की पून्यो तथा गोपाष्टमी ये तीन उत्सव अवतारलीला के है, तातें अभ्यंग नहीं, तथा नये वस्त्र नहीं, वही मुकुट काछनी कों सिंगार तथा गोपालवल्लभ में नई सामग्री नहीं, ये तीनों लीला व्यापि वैकुण्ठ में सदा हैं। अवतार लीला में दिन को नियम हैं तातें वाही दिन होत हैं। लीला सदा हैं, वन में पधारि के लीला किये। चतुर्विध पुरूषार्थ तथा दशरस मिले १४ रस की लीला वन में किये। 'एवं वृंदावने श्रीमान्' यह धर्म १, 'क्वचिन्दायंति' यह अर्थ २ 'क्वचिच्च कलहंसानां' यह काम ३ 'मेघगंभीरया बाचा' यह मोक्ष ४ येहू च्यार रस हैं। "एकायनोसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतुरस" इति। चकोर क्रोंच, यहां तें दशरस, चकोर श्रृंगार १, कौंच वीर २, चक्राहव करूण ३, भारद्वाज अदभुत ४, बर्हि हास्य ५, व्याघ्रसिंह भयानक ६, क्वचित् क्रीड़ा वीभत्स ७, नृत्य तें रौद्र ८ क्वचित् पल्लव' शंत ६ अपरे कृतभक्ति १०, ये चौदह रस की लीला वन में किये। इनको स्थायी भाव को प्रदर्शन ब्रज में अन्तरंग भक्त को जतावत हैं।-अलंक है सो धर्म अर्थ काम मोक्ष को स्थायी भाव। गोरजश्छुरित कुंतल शोभा धायक, रति को उत्पादक, यातें श्रृंगार को स्थायी भाव। गोरज व्याप्त तें जुगुप्सा भई सो बीभत्स को स्थायी भाव। बद्धबर्ह मोर को मुकुट अग्रनिमित्त ते वीररस को स्थायी भाव जो उत्साह सो भयो, और मोर के पंख को बाँधि के मुकुट सिद्ध देख आश्चर्य को स्थायी भाव जो विस्मय सो भयो। वन्य प्रसून बन संबंधी पूष्प हैं यातें वनविषे प्रीति हैं। फिरहू वन पधारें तो यह भय भयो। सो भयानक को स्थायी भाव, और प्रसून हैं प्रकृष्टा सूना हैं, तत्काल कुमिलाय ऐसे को धारण कहा ? यातें हास्य भयो सो हास्य को स्थायीभाव। रूचिरेक्षणं ऐसे सुन्दर नेत्र के दर्शन करन को वन में न गयो जाय तातें भयो शोक सो करूणा को स्थायी भाव, चारू हास देखिकें भयो क्रोध, यातें जो हम (तप्त)तलसत रहें, आप हंसत

हैं, यह रौद्र को स्थायी भाव। वेणु को क्वणन सुनिकें प्रयत्नशैथिल्प भयो सो निर्वेद, यह शांतरस को स्थायीभाव। ''अनुगैरनुगीतकीत्ति'' अनुचर करिकें कीर्ति गायवे को अधिकार हैं। या करिके स्नेह भयो सो भक्ति रस को स्थायी भाव। या भांति १४ रस की लीला जो वन में किये ताके स्थायी भाव विशिष्ठ ब्रज सों लीलास्थ भक्तन को दर्शन कराये।

प्रबोधिनी ११ अभ्यंग पीरे पाट को वागा। लाला पाट को वागा, केशरी कुलही अथवा श्वेत कुलही, साड़ी खुलती, प्रभु को रूई को वागा। यहाँ रजाई फर्गुल ओढ़ युग्म। भद्रा न होय ता समे देवोत्थापन, जो सवेरे देवोत्थापन होय तो राजभोग में फलाहार। सांझ कों देवोत्थापन होय तो शयन भोग में फलाहार आवे, श्वेत खड़ी को चौक सब मंदिर में पूरिये, निज मंदिर में तथा शैया मंदिर में नहीं। जा ठौर देवोत्थापन होय ता ठौर चौक के खंड में गुलाल भरे, और हू विचित्र करनों होय तो और हू भाँति के रंग भरिये। खंडरी को मंडप करे, १६ को ८ को ४ को। जैसें सौकर्य होव सो करे। बीच में चौकी धरिये चारों कोनें दीवी पर दीवा धरिये। दीवो न होय तो भूमि में धरिये। सवेरे भद्रा न होय तो श्रृंगार भोग सरे पीछें प्रभु कों मंडप में पधराइये, नहीं तो उत्थापन भोग सरे पीछे पधराइये। पीछें देवोत्थापन तीन बेर करिये। और छोटे स्वरूप होयगा शालग्राम वा श्रीगोवर्द्धनशिला को स्नान पंचामृत सों कराइये। पीछें अंगवस्त्र करि श्रृंगार करि पधराइये। धूपदीप करि छोटी टोकरी आगें धरिये। टोकरी में बैंगन शकरकंद, सिंघाड़ा, नये चणाकी भाजी, छोटे बेर, गडेरी, ये वस्तु कच्चीसँवारे बिना राखिये। जो मुख्य स्वरूप मंडप में पधारे होय तो रात्रि के चार भोग में को एक भोग मंडप में धरिये, तब रात्रि को तीन भोग आवैं। आरती करि सिंघासन पर पधराय राजभोग धरिये, और छोटे स्वरूप मंडप में पधारे होय तो धूपदीप करि, आरती करि पधराइये। तब रात्रि को चार भोग आवें। यह भाव जो मुख्यता निर्गुण को नहीं, यातें सगुण त्रिविध हैं सो जगावत हैं। तातें तीन बेर देवोत्थापन, गंडेरी

रसमय हैं। तातें याको मंडप, मध्य ग्रन्थि है। सो इनको खांडित्य रीतिणी वक्रोक्ति। षोडश भाव विकार हैं।

"एकादशामी मनसो हि वृत्तय आकूतयः पंच धियोऽभिमानाः।
मात्राणि कर्माणि परं च तासां वदिंति हैकादश वीरभूमीः।।"

इंद्रिय ११, तन्मात्रा ५, मिलि १६, हैं। तातें १६ गंडेरी। नायका अष्टविध हैं।

खंडिता विप्रलब्धा च वासकसज्जाभिसारिका।
कलहांतरिता चेव तथैवोत्कंठिता परा ।।१।।
स्वाधीनभर्तृका चैव तथा प्रोषितभर्तृका।
संभोगे विप्रलंभे ता इत्यष्टौ नायिकाः स्मृताः।।२।।

तातें ८ भक्त चतुर्विध हैं ताते चारि मंडप में दीवा करे। सो रस उद्दीपन करे। पंचामृत सों स्नान सो प्रभू विषे निर्दोष भाव की स्थिति रहे, फलादिक काचे धरनें सो वय अपक्व हैं, अंकुरित है, तुलसी सों विवाह हैं तातें तुलसी अन्य संबंध न होन देइ। तातें सबको अभीष्ट। विवाह के चार भोजन तातें रात्रि को जागरण में चार भोग। अवतार लीला विषे कुमारिकान का पतिभाव हैं तातें तुलसी के विवाहांतर्गत इनहू को विवाह हैं। इनको पतिभाव हैं तातें द्वारकालीला को अनुभव है। यह भक्त उभय लीला विशिष्ट हैं। कितनेक भक्तन को ब्रजलीला में ही अंगीकार राजलीला में नहीं। कितनेन को राजलीला में अंगीकार जैसे नंदादिक प्रभृतिन को। कितने भक्तन को राजलीला में ही अंगीकार ब्रजलीला में नहीं, जैसे वसुदेवादि प्रभृतिन को। कितनेक भक्त को ब्रजलीला तथा राजलीला में दोऊन में अंगीकार जैसे श्रीयमुनाजी उभय लीला विशिष्ट जतायवे के लिये तुर्यप्रिया यह नाम हैं। कालिंदी चतुर्थ हैं, यातें तैसे कुमारिका हू उभय लीला विशिष्ट हैं उत्तरार्ध की सोलहमें अध्याय की सुबोधिनी में लिखे हैं 'नन्दगोप कुमारिका भगवता द्वारकायां नीता एवं द्वारका माहात्म्ये त्रयोदशाध्याये।'

"अनुज्ञाता भगवता ततस्ता गोप कन्यकाः।

नमस्कृत्य च गोविन्दं ययुः सर्वा यथागतम्।।१।।
इति वाक्यात। याही तें गोपीचन्दन द्वारका में हैं।

श्रीगुसाँईजी को उत्सव

पौष वदी ६ अभ्यंग, वागा नारंगी पाट को कुलही केसरी, श्रीपादुकाजी को अभ्यंग राजभोग संग जुदो भोग आवे, प्रभु की आरती करि श्रीपादुकाजी कों तिलक आर्ती। यह प्राकट्य स्वार्थ परमार्थ हैं। स्वार्थ तो सुधा को अनुभव वेणूहू कों हैं, वेगु अनुभव आपु करि और कों दैंइ, यहां और सो दैवी, तिनको उपदेश दारा सुधा स्थापन, यह परमार्थ, और परमार्थ तो 'जीवय मृतमिव दासं' यह भगत्वाक्य हैं। वाक्बन्ध हैं तातें वाक्यपतिसुत को आभिर्भाव होय तो वाक वंध पूर्ण होय तब सुधारस को आविर्भाव करि मुख्य स्वामिनी दासत्व को प्रार्थना किये, स्तोत्र अष्टक प्रगट किये। अतंएव श्रुति प्रतिपाद्य सो ब्रह्म यह श्रीआचार्यजी को स्वरूप सुधा रूपत्व तें, जो श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात् वेद के वक्तां त्यों यहां साक्षात् सुधा के दाता "अदेयदान दक्षश्चेति", और श्रीगुसांईजी विषे वेणुभाव ते देह भावविशिष्ट जो गीता के वक्ता, त्यों यहां श्रीमदाचार्य प्रकटित पुष्टिमार्ग के प्रकाशकर्त्ता, तातें पुरूषोत्तम श्रीविठ्ठलनाथ' इति। श्वेतवाराहकल्पीय श्रीकृष्णावतार गीता के वक्ता हैं। इनमें गीता के वक्ता जा समें हैं ता समेंइ पुरूषोत्तमाविर्भाव है और वेर तो मोक्ष के दाता हैं, सो वासुदेव कार्य, "कल्पेस्मिन्सर्वमुक्त्यर्थमवतीर्णस्तु सर्वतः।" इति और यहां तो सदा श्रीकृष्णाविर्भाव हैं, तातें उपदेश पुष्टिमार्ग के सदा हैं। गीतावक्ता को सर्वदा आविर्भाव नहीं, अतएव निबन्धे 'सर्वतत्त्वं सर्वगूढ़ं प्रसंगादाह पाण्डवे" सबकों तत्त्व और गूढ हैं सो पूर्ण कला संयोग ते अर्जुन सों कहें- "पाण्डवे अर्जुने प्रसंगात् पूर्णयोगात् आह किंचित्।" भारत में युधिष्ठिर को राज्यप्राप्ति पीछें अर्जुन प्रभु सों विज्ञप्ति किये।

"पूर्वमुपदिष्टं ज्ञानं मम विस्मृतं तद्वद, तदा भगवानाह।
तत्तु योगयुक्तेन मयोक्तमधुना प्रकारांतरेण कथयिष्यते।"

जैसें श्रीमदाचार्यजी विषे भगवद्भाव दास भाव यह दोऊ भाव पूर्ण हैं, तैसे श्रीगुसांईजी विषेहू ये दोऊ भाव पूर्ण हैं। किंच नौमी के दिन प्राकट्य हैं, ताहू ते दोऊ भाव पूर्ण को द्योतक नवमी हैं, नोमी को अंक पूर्ण हैं, अंक नोई हैं। आगें तो फेर पहलेइ अंक हैं, और नौ बड़े तोहू नोही रहें, नो और नो अट्ठारह होय, एक और आठ नौ। फिर अट्ठारह नो सत्ताईस सो दोय और सात नो। ऐसें ९० ताई नोई रहे। याको आशय यह जो जैसें नो के अंक कों ऐसो पक्षपात ९० तांई बढ़े तोहू नो ही रहें, तैसे यहांहू भक्त के उद्धार को पक्षपात। सजातीय या विजातीय को दुःसंग होय तोहू निवेदनांतर त्याग नहीं। श्रीपादुकाजी विषें साधन भक्तिरूप चरणारविन्द को दर्शन करि फलरूप श्रीमुखभक्ति ताही को भाव विचारनों। ताते भोग धरनों तथा तिलक करनो, और बागा पाग न पहरें, ओढ़नी वा रजाई ओढ़ें, सो दरशन में चरणारविन्द ही आवत हैं।

माह सुदी ५ वसन्त पंचमी- अभ्यग, रूई के वागा ऊपर श्वेत पाट को वागा, श्वेत कुलही, सिंघासन वस्त्र पिछवाई चन्दोवा सब श्वेत साज, राजभोग सरे पीछें झारी में जल भर लाल वस्त्र सूतरू लपेट, झारी में खजूर की डार में बेर खोसें, तथा सरसों के फूल ऐसो वसन्त सिद्ध कर सिंघासन आगें धरि बसन्त खेलें। पीछें भोग तो पहले दिन ही आवे, और डोल तांई नित्य बसन्त खेलें। तामें झारी को बसंत पहले पंचमी के ही दिन, बसन्तपंचमी कों काम को जन्म हैं। बसन्त ऋतु हैं सो काम को पूजन करत हैं, भौतिक काम लौकिक विषे हैं, आध्यात्मिक काम कों रूद्र दाह किये। आधि दैविक काम भगवान आप हैं 'साक्षान्मन्मथमन्मथः' इति। आधिदैविक काम को आधिदैविक वसन्त ऋतु पूजन करत हैं। केशर चोवा अबीर, गुलाल इतने करि पूजन, तहां केशर वामभाग वर्णसाम्य, चोवा भगवद्वर्ण साम्य, अबीर श्वेत ते हास्य प्रसन्नता, गुलाल तें अनुराग, दुपहर को शैया

पास केशर अबीर गुलाल इतनों रहे, चोवा नहीं, यहां तांई क्रीड़ा भक्ताधीन हती। शैया पास क्रीड़ा भगवदधीन हैं, तातें चोवा नहीं, सब श्वेत साज यातें जो मुख्य निर्गुण की कृति। फेर रंगीन पाट के बागा १४ चौदश तांई पहिरें। झारी में बसंत धरनो सो पुष्पफलयुक्त है। प्रबोधिनी को अंकुरित हैं, बसन्तपंचमी को पुष्पित भयो। दसमी तांई उद्दीपन क्रीड़ा है। दश भक्तजन के भाव करि तातें वसन्त गावत हैं।

होरी डांडी अभ्यंग - वागा सूतरू श्वेत पाग श्वेत अब ते होरी तांई पाट के बागा नहीं, रंगीन सूतरू बागा होंय सो छठ तांई पहरें, होरी डांडो रोप्यो सो कन्दर्प को आरोपण किये। फाल्गुन कृष्णपक्ष की १ ते उतरे ३० तांई, १ मस्तक, २ नेत्र, ३ अधर, ४ कपोल, ५ कण्ठ, ६ कुक्ष, ७ युग्म, ८ उर, ९ नाभि, १० कटि, ११ गुह्य, १२ जंघा, १३ घोंटू, १४ चरण, १५ पदांगुष्ठ, याही प्रमाण १ ते पन्द्रह १५ तांई चढ़ें। शुक्ल १ पदांगुष्ठ, २. चरण ३ घोंटू, ४ जंघा, ५ गुह्या ६ कटि, ७ नाभि, ८ उर, ९ युग्म, १० कुक्ष, ११ कंठ, १२ कपोल, १३ अधर, १४ नेत्र, १५ मस्तक। या प्रकार अलौकिक भावात्मक हैं, लौकिक बुद्धि सर्वथा न राखनो, आलंबन क्रीड़ा हैं महीना पर्यंत तातें धमार गावत हैं।

श्रीजी को उत्सव - बड़ों अभ्यंग, वागा केसरी, चीरा हर्यो, युग्माविर्भावतें, उत्सव दोय मुख्य, श्रीजी को १ तथा श्रीगोकुलचन्द्रमाजी को २ दोय उत्सव। गुप्त स्थान तथा आधार भेद मिलि ४ चार उत्सव। श्रीगोकुलचंद्रमाजी के इहाँ ४ उत्सव और मंदिरन में २ उत्सव हैं।

फाल्गुन शुक्ल ११ तें खेल बड़ो, शयन आर्ती समें गुलाल उढ़े होरी तांई।

होरी - अभ्यंग, वागा श्वेत, पाग श्वेत, रात्रि कों होरी मंडली सो आरोपण, तेजोमय हैं यह द्योतन किये।

डोल - अभ्यंग, वागा श्वेत पाट को, कुलही श्वेत। बसन्तपंचमी को श्रृंगार और डोल को श्रृंगार एक। श्रृंगार भोग सरे पीछे डोल बैठें। सो

सूर्योदय पहिले डोल बैंठें, तो आछो। 'दोलोत्सव उत्तरानक्षत्रे अरूणोदय समये कार्य,' इति पत्रलिखितत्वात् याही ते डोल ते उतरे पीछे राजभोग आवें, यह निंकुज क्रीड़ा है। तातें निज मंदिर में डोल न झूलें, अतएव डोल ते उतरि वागा ऊपर को गुलाल सब पोंछि श्रीमुख पोंछें, आभरण पोंछि के पहरावनें, पीछें राजभोग आरोगवे को निज मंदिर में पधारें, भोग तीन हैं सो वामभाग दक्षिण भाग ललिता प्रभृति समस्त कों, तातें तीसरो भोग बड़ो, खेल च्यार हैं, सो ३ खेल तो इनके, चतुर्थ खेल प्रभु को, यह लीला अधिकार बिना विशेष भावनीय नहीं।

रामनौमी – चैत्रसुदी ९, श्रीराम हास्यावतार हैं, अभ्यंग केशरी वागा कुलही साड़ी, या उत्सव कों संपूर्ण व्रत हैं, "रामनवमीप्रभृतिव्रतानि भगवन्मार्गे कर्त्तव्यानि" इतिवाक्यात्। यातें श्रीनंदराय जी या उत्सव कों जन्मानंतर फलाहार करत हैं, तातें राजभोग सरे पीछें जन्म होय, उत्सव के भाग संग फलाहार भोग आवें, वसन्त ऋतु पुष्पित होय पूजत हैं, तातें डोल पीछें जब फूले आवें तबतें फूलमंडली होय, सिंहासन की मंडली अक्षेयतृतीया के पहले दिन तांई होय, और शैयामंडली तथा सांगामांची की मंडली फूल होय तो वैशाख सुदी १३ तांई होय।

श्रीआचार्यजी को उत्सव – वैशाख कृष्ण एकादशी ११, अभ्यंग, केशरी कुलही, वागा छूटे बंदकी वा पिछोड़ा, केशरी साड़ी श्रीपादुकाजी विराजत होंय तो अभ्यंग। राजभोग संग जुदो भोग आवें, प्रभु कों आरती करि श्रीपादुकाजी कों तिलक करि अक्षत लगाय बीड़ा धरि मुठियां ४ बारि चूंन की आरती करिये। यह प्राकट्य परार्थ तथा परमार्थ हैं। परार्थ तो दैवी जीवन के उद्धारार्थ हैं।

"दैवी सृष्टिर्व्यर्था च भूयात्त्रिजफलरहिता देव वश्वानरैषा" इति। परार्थ तो भगवदर्थ, 'न पारयेहं निरवद्यसंयुजां इति।

अतएव दोऊ भाव मुख्य। भगवदभाव तथा दास्य भाव। तहाँ भगवदभाव तों –

'अर्थ तस्य विवेचितुं न हि विभुर्वैश्वानाराद्वाक्यते।
रन्यस्तत्र विधाय मानुषतनुं मां व्यासवच्छ्रीपतिः दत्त्वाज्ञां च कृपावलोकन पटुः। यह अशेषमाहात्म्य, और दास्यभाव तो "इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य वचः'

यह शेष माहात्म्य दैवी जीव के उद्धारार्थ प्राकट्य। यातें श्रीआचार्यजीन को प्राकट्य चिदानंदसद्रुपः। वैश्वानरः चित् वल्लभाख्यः आनन्द, सद्रूपः -सत।

अक्षयतृतीया - अभ्यंग, पिछोड़ा, पाग, साड़ी, प्रभृति धुइ सेत, कोर केसरी, राजभोग आये पीछे, चन्दन केसर मल्यो गाढो घसिये, एक छन्ना में धरि जल नितार डारिये गोली बाँधि गोला एक कीजिये, तहाँ प्रभु के लिये दो गोली चरणारविन्द पर पहरायवे की, एक गोली वक्षःस्थल के लिये ३ गोली सिद्ध करीये। स्वामिनीजी विराजत होंय तो दो गोली चरणारविन्द की सिद्ध करके राजभोग सरे पीछे पहिराइये, नये पंखा कीजिये, पाछें सीतल भोग धरिये। भोग सरें पीछे राजभोग आरती करि, हाथ धोय, चंदन की गोली बड़ी करिये। मूर्तिमंत ग्रीष्म ऋतु को अंगीकार अक्षयतृतीया के दिन, यातें सबही सीतल सामग्री हैं। ऐसें वर्षा ऋतुको अंगीकार आषाढ़ सुदी छठ कसुंबा छट्ठ के षडरूपर्व दिन, शरद्ऋतु को अंगीकार भाद्रपद सुदी ११ दानलीला के दिन, हेमंत ऋतु को अंगीकार कार्तिक ११ प्रबोधिनी के दिन। शिशिर ऋतु कों अंगीकार पौंष वदी ६ श्रीगुसांईजी के उत्सव के दिन। बसन्तऋतु को अंगीकार माघ सुदी पंचमी बसन्त पंचमी के दिन। ग्रीष्म ऐश्वर्य, वर्षा वीर्य, शरद यश, हेमंत श्री, शिशिर ज्ञान, वसन्त वैराग्य।

नृसिंहचतुर्दशी - अभ्यंग, पिछोड़ा, पाग साड़ी प्रवृति, श्वेत धुई सो निर्गुण तुरीया प्रिया। केसर छिडके सो वामभाग वर्ण साम्य, चोवा लगाये सो भगवद्वर्ण साम्य, लाल आभरण सो दक्षिणवर्ण साम्य, नृसिंहावतार हैं सो कौस्तुभावतार हैं, कौस्तुभ कंठ में हैं, क्रियाशक्तितः, ज्ञानशक्ति के मध्य में स्थापित हैं, चोवा हैं सो अवतार हैं, केसर तथा लाल आभरण के मध्य हैं।

याही ते संध्या समे प्राकट्य हैं। या उत्सव को शयन आरती पीछें सखड़ी महाप्रसाद लीजे सर्वथा, 'उत्सवांते च पारणं' मितिवाक्यात्। या उत्सव के पारणा को निर्णय वामनजयंती के निर्णय में विशद् करिकें लिखें हैं। तातें यहां नहीं लिखे।

गंगादशहरा - ज्येष्ठ सुदी १०, गंगाजी को उत्सव हैं पहिले गंगाजी को भगीरथ जी जब पधराय लाये, तब हरिद्वार जो मायापुरी, तहां तांई पधारे, आगे भगीरथ शंखध्वनि करत जात हैं, पाछे गंगाजी या प्रकार सों पर्वतन को विदारण करत पधारत हैं।

"गंगावारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम्।
त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातु माम्।।१।।
सन्तापहारि दुरितारि तरंगधारि शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविहारि,
साक्षात्कारकारि हरिपादरजो विहारि गागंपुनानुपठतः शुभकारि वारि।।२।।

हरिद्वार में जहनु ऋषि ध्यान करत हते, ता समे गंगाजी को पधारवे को शब्द सुनि, क्रोध भयो जो ऐसा नदी कौन हैं ? में ध्यान करत हूँ, मेरे ऊपर आवत हैं ? सो क्रोध करि पी गये ? तब शब्द रहि गयो, तब भगीरथ फेरिके देखे तो श्रीगंगाजी को दर्शन न भयो, तब यों जाने जो यह ऋषिश्वर को कार्य हैं, यह जानि जह्नु की स्तुति किये। तब जह्नु प्रसन्न भये, पूछे कहा हैं ? तब भगीरथ कहे मैं श्री गंगाजी कूं हमारे पितरन को उद्धारार्थ पधराय लायो। सो अब दर्शन नहीं होत, तब जह्नु अन्तर्दृष्टि करिके भीतर देखे तो श्रीगंगाजी विराजत हैं। जब जह्नु भगीरथ सों कहे घर आई गंगा कौन छोड़ें ? में पान कियो, तब भगीरथ कहे मेरे पितरन को उद्धार कैसें होय ? तब जह्नु श्रीगंगाजी सों पूछे भगीरथ विनती करत हैं पितरन के उद्धारार्थ। तब श्रीगंगाजी आज्ञा दिये जो तुमको क्रोध भयो सो दक्षिणकर्ण ते श्रवण करके भयो हैं। सो दक्षिण कर्ण ते प्रवाह निकसेगा। सो वैशाख शुक्लपक्ष की सप्तमी के दिन प्राकट्य भयो। जह्नु के दाहिने कर्ण ते प्रकटे।

"वैशाखे शुक्लपक्षें सप्तम्यां जह्नुना जाहन्वी स्वयंम्।
क्रोधात् पीता तुनस्त्यक्ता कर्णरन्ध्रात् च दक्षिणात्।।"

वैशाख सुदी सप्तमी को हरिद्वार में प्रकटे, पीछे ज्येष्ठ सुदी १० के दिन प्रयाग में श्रीयमुनाजी को समागम भयो। पहिले चरण सम्बन्ध तें श्रीगंगाजी को यह माहात्म्य हतो "सो राजन दर्शनादेव ब्रह्महत्यापहारिणी"। अब श्रीयमुनाजी के संगम तें मुररिपु श्रीकृष्णचन्द्र, तिनको प्रियंभावुका भई।

'यया चरणपद्मजा मुररिपोः प्रियंभावुका।
समागमनतोऽभवत्सकल सिद्धदा सेविताम् इति।।

और अष्टविध ऐश्वर्य जो अलौकिक ताको दान दिये। अब गंगास्नान जो भावपूर्वक करे, तिनको कृष्णचन्द्र प्यारे लगे। यह भगवदीयत्व को दान श्रीयमुनाजी द्वारा गंगाजी को भयो, तातें यह ज्येष्ठ सुदी १० कों उत्सव मानिये तो आपुन को भगवदीयत्व होय।

स्नानयात्रा - ज्येष्ठ सुदी १५, जा दिन उदयात् ज्येष्ठा होई ता दिन स्नान यात्रा। पहिले दिन जल ल्याय, शयनार्ती करि, अधिवासन करिये, दूसरे दिन मंगलार्ती पीछें स्नान कराइये। पुरूषसूक्त पढ़ाइये। याको आशय यह जो नन्दरायजी अपने आगें ब्रज को राज्याभिषेक करावत हैं। पिता अपने आगें पुत्र को राज्य देइ वाको युवराज कहिये। राज्य न देहिं तो श्रीकृष्णचन्द्र ब्रजराज सुत कहवावे, ब्रजराज नहीं। या प्रकार सों व्रजराज कहवावे। 'ब्रजराजविराजितघोषवरे' इत्यादि। और प्राकट्य समय श्रीवसुदेवजी मस्तक पर पधराय चले नन्दालय कों, ता समे शेष आय छाया किये हैं, 'शेषोन्वगाद्धारि निवारयन् फणैः' इति। यातें सर्प जाको उन्नत फण कर मस्तक पर रहे ताकों राज्य होइ यह फलस्तुति में शकुन कह्यो है। सो यहां यद्यपि प्रभु सर्वेश्वर हैं, तथापि ब्रज में व्यापिवैकुंठ को आविर्भाव हैं, यातें ब्रजेश होनो यह मुख्य। अवतार लीला विषे या प्रकार है, और व्यापिवैकुण्ठ में हू श्रीनन्दराय जो सदा विराजमान हैं तहाँ तो यह प्रकार हैं। और

ग्रीष्मऋतु है। यातें जल क्रीड़ा हैं, राज्याभिषेक हैं, यातें सिंगार होय चुके पाछे भोग आवे। तामें दही भात, तथा सेंधाना, अनसखड़ी में मूंग को अंकूरी। तथा पणा मिश्री को तथा खाँड को। दोउ भांत के होइ, बीज के लडुवा तथा चिरोंजी के लडुवा। आंव याको आशय दही भात उत्सव को अंग संधाना स्वादिष्ट, अंकुरो भाव अंकुरित, मिश्री तथा खांड को पणा श्रम निवारण को, बीज चिरोंजी के लडुवा अवयवांगानुभव, आंबा फलानुभव, दुपहर के शैया भोग में पणा अंकुरी, आंब धरिये, उत्थापन भये पीछे यह भोग प्रसदी में काढ़िये। फिर अंकुरी घी में तली होइ सो उत्थापन भोग संग धरिये, राज्य प्राप्ति के पीछे निर्भय क्रीड़ा हैं ताते दुपहर का भाव अंकुरित है। छौंको अंकुरी धरी, सो यह फिर अंकुरित न होय। यथा 'भर्जिताः क्वथिता धानाः भूयो बीजाय नेष्यते" इति वचनात्। भगवद्भाव जो युवराज या उत्सव पीछे यह भाव दृढ़ रहे, ब्रजराज सुत यह भाव पूर्व हतो। अब ब्रजराज पूर्वक युवराज यह भाव सिद्ध भयो।

रथयात्रा - आषाढ़ सुदी २, जा दिन पुष्प नक्षत्र होइ--तो दिन रथोत्सव, अभ्यंग वस्त्र महीन, पर बूटो कस्तुरी को अथवा कसीदा की वा मुकेश को, ऐसो वागा, साड़ी प्रभृति सेत, कुलह लाल आभरण, सिंगार भोग सरें, पाछे रथ पर युग्म पधराइये, माला फूल की पहिराइये, रथ थोरो सो चलाइये, पीछे एक मृत्पात्र में पणा तथा और पात्र में अंकुरी वा ऊपर आम ऐसें भोग तीन आवें, थोड़ो सो रथ चलाइये, ता पीछें भोग आवें, रथ डोल तिवारी में आवें, थोडी सी बेर तांई दरसन होंई, पाछें बड़ो भोग आवें, या भोग में बीज के लडुवा, खांड को पना, मिश्री को पना, आम प्रभृति सब आवें, भोग सरे पाछें दरसन होइ, फिर आरती कर रथ डोल तिवारी तें चौक में होइ के तिवारी में लाइये। भीड सरकाय प्रभु युग्म रथ पर तें चौकी पे पधराइये, पणा भोग धरिये, भोग सराय वागो बड़ो कर पिछोड़ा पहिराइये। पीछे राजभोग धरिये, दुपहर को अंकुरी वा आंव पणा, उत्थापन भोग में छोंकी अंकुरी, इन पदार्थन को आशय, भक्तन के भाव रूप जो मनोरथ जो

राज्याभिषेक देखिके अन्तः ते बाहिर प्रसर, द्रव रूप भयों, तब रथ रूप भयो, इनके भावात्मक हैं, तातें रथवाहक जो अश्व, सो स्त्रीं जनके गहना पहिरें, प्रथम भोग वामभाग रथको, भाव अंकुरित होइ फलित भयो तातें अंकुरी पर आंव धरनें, श्रम निवृत्यर्थ पना, फेरि रथ चल्यो सो दक्षिण भागस्थ को आकर्षण भयो, तब इनके द्वितीय भोग त हू को यही प्रकार फेर रथ चल्यो, सो ललिता प्रभृतिन को मनोरथ आकर्षन भयो तब इनको तृतीय भोग, ताहू को यही प्रकार, फेर श्रीमातृचरण घर पधारें, जानि, मार्ग में भोग धरत हैं। फिर डोल तिवारी में आवे, तहाँ सबको भाव एकत्र है, वामभाग, दक्षिण भाग, ललिता प्रभृति, तुर्थ प्रिया यह व्यापिवैकुण्ठस्थ कों तथा अवतारलीला विषेऊ, अन्य पूर्वा अनन्यपूर्वा सबकी और को भोग हैं, तातें बड़ो भोग हैं। याही तें उत्सव को एक ही आरती, बीड़ा विशेष याही भोग के रथ ते उतारि सीतल भोग श्रीमातृचरण की ओर को, श्रम निवृत्यर्थ, तातें खांड को पना, श्रीमातृचरण कों देह संबंध नहीं, तातें इतने रस की न्यूनता।

'देहेन भावतो वापि संबंधः फल साधकः।
नंदादयो देहजेन प्रादुर्भावेन गोपिकाः।।१।।

देह करिके अथवा भाव करिकें, देहसंबंध फलसाधक हैं, नंदादिक देह संबंध करिके पाये, गोपिका भाव करिकें पाये, वागा बड़ो किये, पिछोडा पहिरे, कुलही रहे।

हिंडोला - श्रावण वदी में जा दिन वृषराशि को चन्द्रमा आछो होइ ता दिन हिंडोला बैंठावे, ता दिन अभ्यंग, लाल कसुंभी, पिछोड़ा प्रभृति, और श्रावण वदी ४ के दिन श्रीगोकुलचन्द्रमाजी को उत्सव हैं, तातें हिंडोला बाहू दिन बैंठत है। तातें या मंदिर के जो वैष्णव हैं, ते चतुर्थी पहलें हिंडोला न बैंठावें, चतुर्थी ते जब सौकर्य होइ, तब बैठावें, ता दिन अभ्यंग करे, तथा केसरी वस्त्र पहिरावें, संध्या आरती करिकें नित्य हिंडोला बैठाइयें, पहिले दिन हिंडोला पें भोग आवें, उतरे ता दिन आरती होइ। श्रीगोकुलचंद्रमाजी

के पहिले दिनहू आरती होइ, तातें या घर के जो अनुचर हैं सो हिंडोरा बैठावें, ता दिन भोग धरें, उतरिवे के समय आरती होइ और हिंडोला तें उतरे ता दिन आरती होइ, हिंडोला को भाव वन में हू है। तथा घर में हू है।

'तैसी यह हरितभूमि, तैसीय वीरवधू चलत सुहाय माई। 'यह वनको और 'रंग मच्यो सिंहद्वार हिंडोरा व झूलना' यह घर को, वन के हिंडोला में अंतरंग लीला प्रगट, बाह्य लीला गुप्त तहां श्रीजी के यहां वन को हिंडोरा ही हैं, तातें हिंडोरा तें उतरि संध्या आरती होय, और सातों मंदिर में घरको हिंडोरा हैं, तातें संध्या आरती भये पीछें हिंडोला झूलें, यातें वैष्णव के यहाँ तो सातों मंदिर की रीति हैं तातें संध्या आरती करि नित्य हिंडोरा बैठावें, हिंडोरा उतरवे को मुहुर्त सांझ को न होइ तो सवेरे श्रृंगार भोग सरे पाछें झूलें।

ठकुरानी तीज - श्रावण सुदी ३, अभ्यंग, लाल सुई, पीरी, चूँदड़ी, पाग पिछोडा साडी प्रभृति, हीरा के आभरण, यह हिंडोला वरसाने में झूलकें नंदालय पधारि झूलत है। तातें चूनरी लाल पीरी रंग सो दोऊ भाग को वर्णसाम्य, हीरा के आभरण सो जैसे 'हारहास उरसि स्थिर विद्युत्'।

पवित्रा एकादशी - श्रावण सुदी ११, अभ्यंग कसुंभी पाग पिछोडा साडी प्रभृति, फिर जा घर के सिंगार की जैसी रीति, पवित्रा राखि के संग अधिवासन होइ, भद्रा न होइ ता समय पहिरें, केसरी पाट को सलंग और रंग नहीं ऐसो पवित्रा एक पहिराइयें, पीछें १ पवित्रा रंगीन में ते गुरू को भाव कर आस्यरूप हैं, तातें श्रीमुख के साम्हे देखि प्रभु को पहिराइये, तब भेट धरिये, यथा सौकर्य, तैंसे घर के होइ सोउ पवित्रा होइ तो एक एक पवित्रा पहिरावत जाय और यथा साकय भेट धरत जाय, जे प्रभु को छूवत होइ वाको पवित्रा देहि पहिरावे, आपुन भेट करें, स्वगुरू को पवित्रा पहिराये बिना जलपान कैसे करें ? तातें अवश्य गुरू को भाव करि प्रभु को पहिराय चुकें पाछें दूसरो पवित्रा पहरावे, यह भेट जहां अपने मंदिर उत्सव कीर्तन

की रहत होय, तहाँ सोंपनी, याही तें मन्दिर में तीन भेट हैं, १ जन्माष्टमी के पालने के समय की तथा २ दिवारी के दिन हटरी के समय की, ३ पवित्रा के दिन की, सो सब उत्सव कीर्तन की भेट रहे, तहा सोंपनी, तामें दोइ भेट तो प्रभु को भई। सो प्रभु में जो जहां के सेवक हैं तहां के प्रभु को आविर्भाव हैं, यातें ये दोइ भेट वहांई की हैं, और पवित्रा की तो गुरू की ही है। मुख्य गुरू वे जो निवेदनमंत्र को उपदेश दियो होइ ते, जाको निवेदन मन्त्र नहीं, ताको शरणमंत्र लियो होइ सो गुरू मुख्य, सूतकी पवित्रा तार ३६० पहिरावनो आवश्यक नहीं, शास्त्र में कह्यो हैं, देव को नित्य नये वस्त्र पहिरावनें, तातें इतनों सौकर्य न होइ तो वर्ष एक के दिन ३६० होंइ, तातें सूत के तार ३६० करि देवको पहेरावे, जो नित्य को एक एक तार करि नये वस्त्र पहरें यों कह्यो हैं, परन्तु श्रीआचार्यजी के मार्ग में नित्य नये वस्त्र पहिरावने, यह रीति नहीं। जन्माष्टमी को श्रृंगार नवमी के दिन वही रहे। तथा दशमी के दिनहू जन्माष्टमी के वागा पहिरें, तथा दूसरे उत्सव कोहू पहिरें, तैसें दिवारी के वागा अन्नकूट के दिन पहिरें, तैसे प्रबोधिनी कों सिंगार द्वादशी के दिन रहे, और हू कितनेक उत्सवन कों सिंगार दूसरे दिन होत हैं, यातें नये वस्त्र की रीति होइ तो फेर वही सिंगार कैसे होइ ? यातें सूत को पवित्रा आवश्यक नहीं, और ब्रह्मसम्बन्ध की आज्ञा भई जा समय ता समय श्रीआचार्यजी महाप्रभु सूतको पवित्रा पहिराये, ताको आशय यों जानि पड़त हैं, आपकों त्यागपक्ष को स्वीकार हतो, निरपेक्षता हती, तातें जब जो संप्राप्त भयो तब वाको स्वीकार, श्रीगोकुल में बसती तो तब हती नहीं, जो पाटको मिलें, यातें द्वादशी को पहेरावनों शास्त्र सिद्ध है।, तातें सूत को करि राखे, सो एकादशी के दिन अर्धरात्रि को समय, साक्षात् प्रभु पधारे, तब वा समय वही पवित्रा पहिराये। यातें एकादशी के दिन प्रभु पहिरें। पाटके पवित्रा में पहिलें पहिरें केवल केसरी पाटको, सो पीतांबर स्वीकार हैं, यातें 'तुव बरन तन श्याम सुन्दर धरत पट पीरे,' जैंसे पीतांबरा बृत तैसें पाटको पवित्रा। पीछे और भक्त को स्वीकार, तातें वृत तैसें

पाटको पवित्रा को अंगीकार। पीछे द्वादशी के दिन आपुन प्रसादी पवित्रा पहिरिये। सो भक्त विशेष भगवत्स्वरूप अपने हृदयारूढ होइ, मिश्री भोग मिश्री मधुर हैं तातें मधुरभावाविष्ट भक्त होइ, मधुरता को स्वरूप तहां यह हैं।

'अधरं मुधरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं।।'

या माधुर्य लावण्य को पान होइ, पवित्रा हिंडोरा को लपेटे तथा झालर कीये सो भक्त करि हिंडोला वेष्टित हैं, वाम भाग करि प्रभु वेष्टित हैं, भक्तन के वस्त्र को तथा पवित्रा को वर्ण दोऊ को साम्य हैं, और पीरो पवित्रा श्रीकंठ में हैं, सो तो श्रीअंग को वर्ण साम्य हैं, तातें श्रीकंठ में हैं, तास को पवित्रा सो भाव प्रकाशक हैं, या भाव को प्रकाश होइ तबहि कार्य सिद्धि होई। यातें तास को पवित्रा हू सौकर्य होइ तो आवश्यक हैं, मुख्य पाटकों कीर्तन में हू पाटके पवित्रा को वर्णन हैं, सूतको नहीं, पाटको जब बनि न आवे, तब सूतको सिद्ध करें।

पूनम राखी - श्रावण सुदी, अभ्यंग पीरो हरदिया पिछोरा, कुलही साड़ी प्रभृति, लाल आभरण, जा घरकी जैसी वस्त्र की रीति, सो पहिरें, तथा आभरण पहिरें, राखिकों अधिवासन पवित्रा के संग भयो हैं, भद्रा न होय तब पहिरें, राखी लाल पाट की होइ, वर्षाऋतु को अंगीकार तों आषाढ़ सुदी ६ के दिन है। वर्षाऋतु पुष्पिता भई सो राखी के दिन, आगें जन्माष्टमी के दिन फलित होयगी, तातें क्रियाशक्ति जो हस्त तामें अंगीकार हैं। वर्षा ऋतु को जो भगवद् विषयक प्रीति ता अनुराग के ये पुष्प हैं। याही ते जन्माष्टमी के दिन चंदौवा वा पिछबाई बधें। गादी पर लाल साज होइ, खिलौना सों खेलें, पुष्पित होत हैं, तब गुड के पूव होत हैं, वर्षाऋतु हू पुष्पित भावापन्न हैं, तातें भोग हू गुड पापड़ी, तिलक कुमकुम को, पीरे अक्षत, आरती नहीं, पुष्पित हैं तातें, फलित होइ तो आरती, श्रवण सुदी ३ तैसें राखी तांई हिंडोला आवश्यक हैं, फिर जा दिन मुहुर्त आवे ता दिन उतरवे के समय आरती

होइ। हिंडोला बैंठे ता दिन भोग आवें।

उपसंहार

या प्रकार तीन भावना कही, प्रथम स्वरूपभावना कही, याको फलितार्थ यह हैं जो स्वरूप तो श्रीजी तथा सातों स्वरूप, 'षोडश गोपिकानां मध्ये अष्टकृष्णा भवन्ति' यातें आठों स्वरूप की भावना करनी, जैंसे स्वरूप विराजत हैं, कोई श्याम कोई गौर कोई गौरश्याम है, कोई द्विभुज, कोई चतुर्भुज, कहूँ शंख चक्र गदा पद्म यह चारो आयुध हैं, कहूँ शंख मात्र हैं, कहूं अच्छिद्र, कहूँ श्रीहस्त अभयंकर, इत्यादि पदार्थ स्वरूप में हैं तिनकी भावना, यह कौन लीला विशिष्ट विग्रह हैं ? यह स्वरूप भावना।

दूसरी लीलाभावना कही, याको फलितार्थ यह हैं, जो लीलास्थ जे भक्त, श्रीस्वामिनीजी, श्रीयमुनाजी, श्रीगोवर्धनपर्वत, प्रभृति की भावना करनी सो, यह लीला भावना।

तृतीय भाव भावना, याको फलितार्थ यह हैं, जो सेवा के तो अधिकारी लीलास्थ भक्त, इनके भाव की भावना, सो दोइ प्रकार की, सो प्रातआरंभ्य सायंपर्यन्त, तथा वर्ष के उत्सव की सेवा, इन दोऊन की भावना करनी, यह भाव भावना या प्रकार तीन भावना कही।

गुरूसेवा एवं वैष्णव कर्त्तव्य

या भावना तब सिद्धि होइ जब गुरू प्रसन्न होय, तातें गुरू को प्रसन्न राखिये, गुरू हैं सो हृदयांधकार के निवर्तक हैं।

"गुशब्दस्त्वंधकारे स्यात् रूशब्दस्तन्निवर्त्तकः।
अन्धकारनिवृत्त्वाद् गुरूरित्यभिधीयते इति।।"

हरि जब अप्रसन्न होइ तब गुरू रक्षा करे, जब गुरू अप्रसन्न होइ तब कोउ रक्षक नहीं, यातें तनुजा वित्तजा सेवा करिकें गुरू को प्रसन्न करिये।

"हरौ रूष्टे गुरूस्त्राता गुरो रूष्टे न कश्चन।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरूमेव प्रसादयेत्।।"

तहां मुख्य गुरू तो श्रीआचार्यजी तथा श्रीगुसाँईजी, ता पीछे इन्को कुल गुरू है। श्रीकृष्णज्ञानन्दः या पद करिके श्रीमहाप्रभुजी गुरू हैं, और श्रीगुसांईजी को शेष महात्म्य तथा अशेष माहात्म्य यह दोउ माहात्म्य को स्थापित किये है।, यातें गुरू हैं। "श्रीविट्ठलेशे स्वाखिर्लमाहात्म्यस्थापकाय नमः।" और कुल में तो "अस्मत्कुलं निष्कलंकं श्रीकृष्णेनात्मसात्कृतं" या वाक्य तें कुल हैं सो गुरू हैं। 'यथा देहे तथा देवे, यथा देवे तथा गुरो'। इन्द्रिय व्रत करिकें देह पोखन करिये, तो प्रान पोखन सेवा होइ, जैसें प्रान सेवा करनी तैसें देव सेवा करनी प्राण सेवा करे तो इन्द्रिय देह भाव को प्राप्त होइ। 'आसन्यस्य हरेर्वापि सेवया देवभावतः'। आसन्य सो प्राण, हरिसेवा करे तो व्यापि वैकुंठ की प्राप्ति तब होइ जब गुरू सेवा करें, जैसी हरिसेवा तैसी गुरूसेवा।

'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

देह सेवा तथा देव सेवा, गुरू सेवा, यह तीनो सेवा नित्य करनी ताको प्रकार, तहाँ देह सेवा तो याको जो पदार्थ अपेक्षित है सो सिद्ध करत हैं, तैसे देव सेवा जो पदार्थ अपेक्षित हैं सोउ सिद्ध करत हैं, दोई सेवा तो भई, गुरू सेवा तो शेष रही, यह सेवा होइ सो पहेली दोउ सेवा सिद्ध होइ, गुरू सेवा तो कीनी न जाय श्रम बिना, सो उपाय कहत हैं, तहाँ जाको उपदेश निवेदन मंत्र न लीनो होइ, तहां तांइ शरणमंत्र को उपदेश भयो, येही गुरू मुख्य हैं, यह जानि भगवदीय यों करे, जो घर में नित्य खरच होय सो लिखिये, तब वामें ते रूपया पीछे पैसा वा अधेला व छदाम, यह तीन पक्ष हैं सो काढि जुदी थैली में धरत जाइये, और कमायवे में ते तेउ ऐसे काढिये, तो व्यापार में वृद्धि होय, और प्रभु प्रसन्न होइ और जुदी भेट काढिकै एक थैली में राखते जइये, जब भेटआ आवे तब ढील न होय,

और जो जुदो न काढिए तो जब वैष्णव साथ प्रस्ताव में और बेर भेट मांगे तब काढी न जाय याते यह अनायास सुगम मार्ग हैं, उद्धार तो गुरू के हाथ, वहां सन्मुख भयो तब जन्म धरे को सार्थक कियो, यातें मन्दिर में तीन भेट होइ। १ पालने के समय २ हटडी के समय ३ पवित्रा के समय यह तीन भेट तथा उत्सव कीर्तन भेट यह सब अपने प्रभु के मंदिर पहोंचे तो गुरू सेवा तदनंतरगत भगवत्सेवा दोऊ सिद्ध होय। अपने यहाँ प्रभु विराजत है, उनमें तिनको आविर्भाव हैं, तिनकी सेवा गुरू द्वारा सिद्ध भई, यह परम महा भाग्य मान कीजिये, और कीर्तन के प्रमाण राखिये तो कीर्तन चले, अधेली कीर्तन भेट, एक टका श्रीजी को, एक पैसा रणछोड़जी को, एक पैसा टहलवा कों दीजिये, तो कीर्तन ठहराइ आवें, यह सेवा चोंप सों करें, समर्पण मंत्र लीजिये तब श्रीजी के भेट देह पाछें गुरू कों भेट करिये। यहां रणछोड़जी को भेट नहीं। उत्सव कीर्तन की भेट तथा पधरावनी में श्रीजी ते आदि रणछोड़जी की भेट, समर्पण मंत्र लेइ ता समय नहीं, नाम मंत्र ले तब श्रीजी की हू भेट आवश्यक नहीं जो उत्साह में आवें सो धरे, परन्तु इतनो विचारिये जो जगत में बहुतेरे जीव हैं तिनतें हमारे ऐसे भाग्य हैं, श्रीमद्वल्लभाचार्यजी श्री गुसांईजी साक्षात् ईश्वर पूर्ण पुरूषोत्तम इनकी शरण गये। और मार्ग में गुरू जीव है सेवा ईश्वर की। या पुष्टिमार्ग में गुरू ही पूर्ण पुरूषोत्तम सेवा हू पूर्ण पुरूषोत्तम इनकी इनकी शरण गये, और मार्ग में गुरू जीव हैं सेवा ईश्वर की, या पुष्टिमार्ग में गुरू ही पूर्ण पुरूषोत्तम सेवा हू पूर्ण पुरूषोत्तम को सेवोपयोगी पदार्थ हू निर्दोष हैं। शरणमंत्र लियो तब आपु में ते आसुर भाव निवृत्त भयो हैं। 'तस्मात् सर्वात्मना नित्य श्रीकृष्णः शरणं ममेति।' और निवेदन मंत्र लियो तब स्वसंबंधी पदार्थ में ते सर्व दोष निवृत्त होय सेवा योग्य सब पदार्थ भये। अब ऐसें शुद्ध जो द्रव्यादि पदार्थ हैं, ताकों व्यर्थ न करिये इतनों विचार के जो कर्त्तव्य होइ सो करिये।

कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौव्ययागमौ।
कश्चाहं का च में शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः।।

प्रथम समय विचारिये पाछें आपुनो हित विचारिये। पीछे देश विचारिये। पीछे खर्च विचारिये, पीछे आमदनी विचारिये, पीछे अपनो स्वरूप विचारिये। जो मोंको कितनो अधिकार भयो हैं ? पीछे अपुनो सामर्थ्य विचारिये, यह सातों वार्ता विचारिकैं कार्य करे तो कबहू क्लेश न होय।

"हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः"

भगवान् षडगुण युक्त ऐश्वर्य सम्पन्न होइ के रक्षक हैं और भगवदीय भक्ति माने हैं तब कछु चिंता नहीं, भगवान् भक्ति माने हैं, ऐसे चित्त स्थिर राखि सेवा तथा स्मरण ही करिये।

।। इति श्रीद्वारकेश विरचित भाव भावना सम्पूर्ण।।

पुस्तक प्राप्ति स्थान:-
पुष्टिमार्गीय पुस्तकों का केन्द्रः
श्री बजरंग पुस्तकालय
दाऊजी घाट, मथुरा (उ.प्र.)